गुलाब और बुलबुलः संवेदना और शिल्प

एम.फिल (हिन्दी) उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध–प्रबंध

शोध निर्देशक

डा॰ गोबिन्द प्रसाद

शोधार्थी

संदीप कुमार जायसवाल

भारतीय भाषा केन्द्र

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली–110067

2008

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
Centre Of Indian Languages
School Of Language, Literature & Culture Studies
NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 23/7/2008

DECLARATION

I declare that the work done in this dissertation entitle *"GULAB AUR BULBUL : SAMVEDNA AUR SHILP"* by me is an original work and has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/Institution.

Sandeep Kumar Jaiswal
Sandeep Kumar Jaiswal
(Research Scholar)

23.7.08
DR. GOBIND PRASAD
(Supervisor)
Centre Of Indian Languages
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE
& CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110067, INDIA

28/7/08
PROF. CHAMANLAL
(Chairperson)
Centre Of Indian Languages
SCHOOL OF LANGUAGE, LITERATURE
& CULTURE STUDIES
NEW DELHI-110067, INDIA

अम्मा बाबू जी के लिए...

अनुक्रम

	पृ. सं.
भूमिका	I-II
अध्याय : एक	
त्रिलोचन का काव्य व्यक्तित्व	1 – 17
अध्याय : दो	
हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा और उसका स्वरूप	18 –47
अध्याय : तीन	
गुलाब और बुलबुल : संवेदना के विभिन्न धरातल	48 – 94
अध्याय : चार	
गुलाब और बुलबुल का शिल्प	95 – 112
उपसंहार	113–114
संदर्भ सूची	115 – 116

भूमिका

ग़ज़ल उर्दू शायरी की सबसे लोकप्रिय विधा है। यह अपनी रवानी, नफ़ासत और गहराई के कारण लोगों के बीच खासी लोकप्रिय रही है। ग़ज़ल भावाभिव्यक्ति का एक बेहतरीन माध्यम है। जिसके कारण हर शायर ने ग़ज़ल कहनी चाही है। हिन्दी के भी बहुत से कवियों ने ग़ज़ल को अपना प्रमुख काव्यरूप बनाया और उसके माध्यम से अपनी उत्कृष्ट रचनाएँ प्रस्तुत की। हिन्दी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री ने भी ग़ज़लें लिखीं। गुलाब और बुलबुल उनकी गज़लों और रूबाइयों का संकलन है।

त्रिलोचन हिन्दी के ऐसे कवि हैं जिनकी कविता को हमारे विद्वान आलोचकों ने लम्बे समय तक उपेक्षित रखा। उनकी कविता को नीरस और रूखा कहकर खारिज किया जाता रहा। त्रिलोचन के ग़ज़लों की भी उसकी सादगी और खरेपन के कारण चलता किया गया। उन्हें (आलोचकों को) उनमें वह रवानी और नफ़ासत नहीं मिली जो ग़ज़ल की पहचान हुआ करती हैं।

त्रिलोचन ने गुलाब और बुलबुल में अपनी ग़ज़लों से पहले गालिब का एक शेर कोट किया है–

या रब न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जुबां और

गुलाब और बुलबुल को पढ़ते हुए मुझे लगा कि कुछ है जो उनकी (आलोचक गणों) नजरों से छूट गया है। वह त्रिलोचन के रूखे और सादे शब्दों के भीतर से बहती हुई करूणा की उस नदी को नहीं देख पाये जो जीवन में प्रेम और उसके सौंदर्य की पहचान कराती है।

उनमें दु:खों और अभावों के बीच भी हंसते रहने का सामर्थ्य है। उनके शेरों में गम के बाद भी अल्हड़ मस्ती और फकीरी ठाट का अंदाज लुभाता है–

ठोकरें दर–ब–दर की थीं, हम थे
कम नहीं हमने मुँह की खाई है। (गुलाब और बुलबुल)

त्रिलोचन की शायरी दुःख से उबरने की ताकत देती है और जीवन के प्रति राग पैदा करती है। जीवन के प्रति यह गहरा राग ही लौटा लाता है बार–बार उनकी शायरी के पास जो अपनी सादगी और खरेपन के बाद भी आकर्षित करती है।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध चार अध्यायों में विभाजित है। पहले अध्याय में कवि त्रिलोचन के संक्षिप्त जीवन–वृत्त, व्यक्तित्व और काव्य–व्यक्तित्व के विविध आयामों का विवरण आदि वर्णित है। दूसरे अध्याय में ग़ज़ल की परिभाषा, उसका स्वरूप और हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा का उल्लेख किया गया है। तीसरे अध्याय में 'गुलाब और बुलबुल' की संवेदना के विभिन्न धरातलों की समीक्षा की गयी है। चौथे अध्याय में 'गुलाब और बुलबुल' के शिल्प पर आलोचनात्मक ढ़ंग से विचार किया गया है। उपसंहार में ग़ज़ल की परिभाषा और स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा के साथ हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा के परिप्रेक्ष्य में त्रिलोचन के महत्त्व को निरूपित किया गया है।

मैं आभारी हूँ अपने शोध–निर्देशक डॉ. गोबिन्द प्रसाद का जिनके स्नेह एवं मार्गदर्शन से मैं इस शोध प्रबंध को पूरा कर पाया। मेरे शोध–निर्देशक ने, जो कि एक कवि भी है और त्रिलोचन काव्य के मर्मज्ञ भी शोध सामग्री के अभाव को बाधा नहीं बनने दिया। समय–समय पर उनके साथ होने वाली काव्य चर्चाओं और उनके महत्वपूर्ण सुझावों ने इस शोध प्रबंध को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। मैं उनके प्रति विशेष कृतज्ञता व्यक्त कर ऋणमुक्त नहीं होना चाहता।

अन्त में अपने परिजनों, मित्रों और शुभचिंतकों के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ जिनकी सदिच्छाओं और सहयोग ने इस लघु शोध–प्रबंध को संभव बनाया।

Sandeep Kumar Jaiswal

संदीप कुमार जायसवाल

अध्याय : एक

त्रिलोचन का काव्य व्यक्तित्व

त्रिलोचन का काव्य व्यक्तित्व

जीवन परिचय

''प्रत्येक युग में कुछ ऐसी प्रतिभाएं होती हैं जिनके नाम का शोर नहीं होता, लकिन चुपके–चुपके इतिहास उसकी महत्ता स्वीकार कर लेता है। छायावादोत्तर हिंदी कविता में ऐसा ही एक नाम है– त्रिलोचन शास्त्री।''[1] हिंदी का यह प्रगतिशील कवि लम्बे समय तक आलोचकों की दृष्टि से ओझल ही रहा। लेकिन '80, '90 के दशक में अपनी कई कृतियों के प्रकाशन के साथ वह साहित्य चर्चा के केन्द्र में आए। संघर्षों और चुनौतियों के बीच से अपना रास्ता तय करने वाले कवि त्रिलोचन का जन्म 20 अगस्त 1917 को कटघरा चिरानि पट्टी, सुल्तानपुर, उत्तर प्रदेश के कृषक परिवार में हुआ था। इनका वास्तविक नाम वासुदेव सिंह है। शास्त्री की उपाधि और त्रिलोचन के साहित्यिक नाम से जुड़कर वे त्रिलोचन शास्त्री हो गए। साहित्य नाम 'त्रिलोचन' इन्हें बचपन में ही मिल गया था। ''दरअसल 6–7 साल की उम्र में ही बालक सुखदेव सिंह ने अपनी स्मरण शक्ति और प्रतिभा से गुरु देवदत्त जी को चकित कर दिया था। तभी उन्होंने गुप्त रूप से इन्हें 'त्रिलोचन' नाम दे दिया था।''[2]

इनके ''पिता का नाम था जगरदेव सिंह। गांव वाले उनको वैरागी बाबू कहते थे। जगरदेव सिंह जी हष्ट पुष्ट शरीर के थे।''[3] कर्मठता और सहृदयता इनके स्वभाव में रची बसी थी। कवि त्रिलोचन ने उनसे गहरे मानवीय संस्कार ग्रहण किये। वह 'उस जनपद का कवि हूं' में पिता के बारे में लिखते हैं–

..... दिया धो
कल्मष दरिद्रता का, बस मे किया काल को
ज्ञान पिपासा और धर्म से हुए यशस्वी
धीर वीर गंभीर तपोधन और मनस्वी।''[4] (उस जनपद का कवि हूं)

''त्रिलोचन जी की मां ठेठ ठकुराइन थी। उस पर मां का अतुल प्यार था। मां चाहती थी कि बेटा शक्तिवान बने, जिंदगी से जूझने लायक बने। मां की आंखों

में भविष्य का सारा नक्शा वासुदेव की मजबूत जवानी की कर्मठता से बधा हुआ था, मात्र।"[5] जबकि उनके पिता अपने पुत्र के अंदर संतों का ज्ञान स्फुरित हुआ देखना चाहते थे। वह उन्हें पढ़ाने के पक्ष में थे। जबकि उनकी मां की मान्यता थी कि "पढ़े–लिखे लोग देहाती जीवन में सफल नहीं हो सकते हैं और पढ़ लिख जाने के बाद झगड़े में या दांव पेंच में जीत भी नहीं सकते हैं। परंतु वासुदेव की दादी जिसे वासुदेव बुआ कहता था, उसको पढ़ाने के पक्ष में ही थी।"[6] स्वयं त्रिलोचन पर भी पढ़ने की धुन सवार थी।

स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के अलावा फारसी सीखने के लिए एक मौलवी के पास जाते थे। "त्रिलोचन के आयुर्वेद के गुरु श्री कल्पनाथ सिंह थे। जिनसे लगभग चार साल तक उन्होंने नाना वनस्पितयों का ज्ञान पाया।"[7] गुजरात के श्री मेघाणी के पास रहकर इन्होंने पत्रकारिता की शिक्षा ली। पंजाब से उन्होंने संस्कृत में 'शास्त्री' किया। बाद में काशी में भी संस्कृत का अध्ययन जारी रहा। पिता ने उनको बचपन में ही एक स्वामीजी के संग भेजा था। उनके साथ रहते हुए और घूमते हुए भी ज्ञानार्जन काफी हुआ था। अपनी बुद्धिमत्ता एवं स्वाध्ययनशीलता के कारण इनका ज्ञान सीमातीत होकर बढ़ता रहा।

कविता के संस्कार बचपन में ही पड़ गए थे। "'मानस' की अनेक चौपाइयां पिता की स्मृति से इनकी स्मृति में अंकित हो गई थीं। साथ ही दादी भी इन्हें प्रायः रोज ही सूर, कबीर, मीरा और तुलसी के पद सुनाती थी। कविता के प्रति किशोर त्रिलोचन यहीं से आकर्षित हुए।...इसके पीछे द्विजदेनी, प्रभुदयाल और धरनीदास जैसे स्थानीय लोक कवियों की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। पढ़ने से जो समय बच जाता था उसे त्रिलोचन समाज की नजरों से छोटी जाति के लोगों के बीच बिताते– खास तौर से इसलिए कि उनसे लोग गीत सुनने को मिलते थे। इस तरह इनके कंठ में कविता सामूहिक कंठ से आई।"[8] कविता करना यद्यपि इन्होंने बचपन से ही शुरू कर दिया था लेकिन तब ये कविता बोलते अधिक थे, लिखते कम थे। लगभग 12 वर्ष की उम्र में यानी 1929 के आसपास त्रिलोचन ने फ्री वर्स लिखना शुरू किया था। दिविक रमेश के अनुसार उनकी पहली कविता यह थी–

प्रभु उन्हें दण्ड दो
जो लोग चलते नहीं
कहते हैं चलते हैं
वे तुम्हारी शक्ति का अपमान करते हैं।
प्रभु उन्हें दण्ड दो।"[9]

11–12 वर्ष की कम उम्र में ही त्रिलोचन का विवाह जयमूर्ति देवी से हुआ जो आजीवन उनके सुख दुख की साथी रही। आर्थिक अभावों और चुनौतियों से जूझते हुए कवि के लिए पत्नी का प्रेम ही सबसे बड़ा सम्बल रहा।

त्रिलोचन जी के पिता का, जब वह छह वर्ष के थे तभी निधन हो गया था। अभावों की पृष्ठ भूमि बचपन में ही बन गई थी। इन्होंने अपना अध्ययन स्वाध्याय से ही किया था। पुस्तकों का खर्च निकालने के लिए हिंदी, उर्दू और हिसाब की ट्यूशन करते रहे।

जीविकावृत्ति के लिए त्रिलोचन पहले पहल काशी आये। कुछ दिनों तक इधर–उधर घूमकर जीविकावृत्ति की तलाश की। पर विफल रहे। घोर मुफलिसी के दिनों में यह घूमते घामते 'सरस्वती प्रेस' पहुंचे। जहां प्रेमचंद जी हंस पत्रिका का प्रकाशन कर रहे थे। "प्रेम चंद जी ने पूछा– 'कौन सा काम कर सकते हैं'। इन्होंने उत्तर दिया कि, जो भी काम वे देंगे, उसे ये करने की चेष्टा करेंगे। अन्त में इन्हें 30 रुपये महीने के वेतन पर प्रेस के प्रूफ रीडर का काम मिला।"[10]

अपने अक्खड़ और फक्कड़ स्वभाव के कारण से या अन्य किसी कारण से, वे किसी नौकरी में स्थिर न रह सके। कई जगहों में कई प्रकार की नौकरी इन्होंने की है। काशी, इलाहाबाद आदि को छोड़ रांची, भोपाल आदि जगहों में भी इन्होंने काम किया है। आज, जनवार्ता, समाज, प्रदीप और चित्ररेखा, हंस और कहानी आदि पत्र–पत्रिकाओं में सह सम्पादन का कार्य भी इन्होंने संभाला है। "समय–समय पर ये अनेक साहित्यिक कोशों के सह सम्पादक भी रहे। 1970–72 के दौरान विदेशी छात्रों को हिंदी, उर्दू व संस्कृत की शिक्षा प्रदान की। 1975 से 1978 तक ये ग्रंथ अकादेमी, भोपाल में भाषा सम्पादक रहे और 1978 से 1984 तक

इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय में द्वैभाषिक कोश परियोजना में कार्य किया। 1984 से 1990 तक ये डा0 हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) की मुक्तिबोध सृजनपीठ के अस्थायी निदेशक पद पर रहे, जहां 1995 में ये पुनः नियुक्त हुए और यहीं से इन्होंने अवकाश ग्रहण किया। इस बीच 1992–93 में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में ये अतिथि प्राध्यापक रहे। फिर दो–तीन वर्ष फारसी–अंग्रेजी–हिंदी कोश परियोजना पर कार्य किया। ... यों त्रिलोचन भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी और प्रगतिशील लेखक संघ से जुड़े रहे, लेकिन राजनीति से प्रेरित किसी आंदोलन के केंद्र में वे कभी नहीं रहे। कई वर्षों तक इन्होंने जन संस्कृति मंच का अध्यक्ष पद संभाला।"[11]

त्रिलोचन–व्यक्तित्व :

त्रिलोचन जी के व्यक्तित्व के बारे में अनेक किस्से प्रचलित हैं। त्रिलोचन कदकाठी में बलिष्ठ। चौड़ी छाती। बड़ी–बड़ी आंखें। घुमक्कड़ स्वभाव। स्वच्छंद वृत्ति। विपुल शास्त्रज्ञान। बहुत कुछ अपने प्रिय कवि निराला की तरह। इन किस्सों ने उन्हें किवंदती पुरुष बना दिया है। नंद किशोर नवल के अनुसार "त्रिलोचन जी शीशे की तरह साफ, दृढ़ प्रकृति के और साथ ही संत अथवा श्रेष्ठ मनुष्य की तरह विलक्षण व्यक्ति हैं।"[12] "अजीब लगना, अजीबों सा रहना, अजीव स्थानों या व्यक्तियों में घूमना और घंटों–घंटों संस्मरण सुनाते रहना त्रिलोचन का खास स्वभाव है। विलक्षण स्मृति के स्वामी और चलते–फिरते ज्ञानकोश हैं त्रिलोचन।"[13] रामदरश मिश्र में अनुसार "त्रिलोचन जी अपने समय में लीजेंड बन गये। उनके बारे में इतनी कहानियां प्रचलित हो गयीं कि क्या सच है क्या झूठ है पता लगाना कठिन हो गया। वे अपने बारे में खुद तमाम कहानियां फैलाते थे।"[14]

"अपनी तयशुदा लकीर से हटी प्रतिक्रियाओं के कारण भी त्रिलोचन एक आकर्षक व्यक्ति लगते हैं। ... किसी जगह जाने की डुग्गी पीटकर वहां न जाना, किसी शहर में जाकर किसी बहुत घनिष्ठ मित्र से भी न मिलना, किसी मित्र की बीबी को दिल्ली तक पहुंचाने जाना और उतनी लम्बी यात्रा के बाद, उस शहर में

पहुंचकर, प्लेटफार्म से ही लौट आना, कभी–कभी रोज दिखाई पड़ने वाली जगहों पर महीनों नदारद रहना, आदि–आदि उनकी सहजता के असहज कारनामें हैं।"[15]

शंभुनाथ मिश्र लिखते हैं– "त्रिलोचन के बारे में निश्चित तौर पर कोई बात नहीं कही जा सकती। आज कुरता पाजाम पहनते हैं, कभी केवल कुरता लंगोट में देखे गये। आज साइकिल पर, कल बस में, परसों पैदल। कह कर नहीं आना, बिना कहे बार–बार असमय भी, आ जाना और घंटों जाने का नाम न लेना ... परस्पर विरोधी बातें कहना, टोकने पर 'सो तो है' कहकर चुप हो जाना। वैसे चुप रहते उन्हें कम ही देखा है।"[16] वे किसी भी विषय पर घंटों बात कर सकते हैं। "शास्त्री पूरा का पूरा निराला काव्य जुबानी सुना सकते हैं, उन्होंने कोशिश करके हिंदी के शब्द भंडार पर गहरा हाथ दे मारा है, वे तत्सम, तद्भव, देशी विदेशी काफी शब्दों का सही अर्थ और परिचय दे सकते हैं, उन्हें खड़ी बोली के अलावा अवधी के ग्राम्य प्रयोगों का खासा अच्छा ज्ञान है, वे जर्मन, अंग्रेजी और फ्रेंच के शब्दों का सही उच्चारण आधिकारिक ढंग से बता सकते हैं ... वे हिंदी कविता के अधीत जानकार हैं, उन्हें आदिकाल से लेकर साठोत्तरी कविता तक में रुचि है। वे पृथ्वीराज रासो और प्रयोगवाद पर सामन रूप से बोल सकते हैं।"[17]

त्रिलोचन के स्वभाव में संतों जैसे अक्खड़पन और फक्कड़पन की झलक मिलती है। "त्रिलोचन से बड़ी आसानी से घंटों उनके सॉनेटस या अवधी बरवै या निराल की –राम की शकितपूजा' सुनी जा सकती है। पर, किसी गोष्ठी में यदि कविता सुनाने की फरमाइश पर ना कह दिया तो एक हजार बार आग्रह कीजिए, वे कतई नहीं सुनाएंगे। ... वे किसी मामूली उदीयमान साहित्यकार के कमरे में बिन बुलाये असमय–कुसमय अक्सर पहुंच जायेंगे। पर, जहां स्वाभिमान को ठेस लगती हो, वहां हजार इसरार की भी परवाह नहीं करेंगे।"[18]

त्रिलोचन के व्यक्तित्व की एक खास बात है उनकी यायावरी वृत्ति। कुछ पाने की तलाश में वह एक शहर से दूसरे शहर भटकते रहते हैं। लक्ष्मी शंकर श्रेष्ठ के शब्दों में "साहित्य ज्ञान और भाषा विज्ञान की, त्रिलोचन की पिपासा उनके तीसरे नेत्र की ही देन समझी जा सकती है। केवल स्वदेशी ही नहीं, बल्कि, विदेशी

साहित्य और भाषा का परिचय तथा उनकी पृष्ठभूमि, दार्शनिकता, अर्थवत्ता, महनीयता एवं व्यापकीयता के अध्ययन–मनन और चिंतन की त्रिलोचन की पिपासा (भले ही वह कंठमात्र की हो) कभी बुझी हुई हो, मैंने तो नहीं पाया। यह प्यास त्रिलोचन को काशी में भी दर–दर की ठाकरें खाते रहने और भटकते रहने को निरंतर बाध्य करती रहती है। और जहां, किसी से भी, कुछ पाने की संभावना ज्ञात हो जाय, तो गुड़ में लिपटे चिंउटे की तरह काशी से पटना तक की ही नहीं, अन्यत्र कहीं की भी, दौड़ लगाने से हमारे त्रिलोचन चूकते नहीं।"[19]

अपनी इस भटकन में त्रिलोचन ने बहुत कुछ अर्जित भी किया है। शिवप्रसाद सिंह कवि के इस अर्जन को इन शब्दों में व्यक्त करते हैं– "गंवई गांव की डगर, धान–पोखर, बातचीत, पुराने लोगों के बेशकीमती अनुभव से प्रसूत उक्तियां, घरेलू दुख–दर्द की अबूझ समझ और खांटी धरती की कास उजास में फूटते मुहावरों और शब्दों की गमक, उनकी अपनी बेशकीमती धरोहर है।"[20] लोकजीवन का यही व्यापक अनुभव उनकी कविताओं में अभिव्यक्त हुआ है।

त्रिलोचन किंवदती पुरुष के अलावा भी और भी बहुत कुछ है जिसकी झलक हम उनकी कविताओं और सानेटों में पाते हैं। वह है उनकी सादगी और साधारणता। मैनेजर पाण्डेय उनकी सहजता के बारे में लिखते हैं– "वे अपने बारे में किस्से सुनकर या तो चुप रहते हैं या मुस्करा देते हैं जैसे कि उन किस्सों से उनका कोई संबंध ही न हो। अपने बारे मे ऐसी तटस्थता, लेकिन दूसरों की गहरी चिंता उनकी विशेषता है। यह बाहर से साधारण दिखने वाले उनके व्यक्तित्व की आंतरिक असाधारणता का प्रमाण है।"[21] "सादगी जीवन के प्रत्येक अंग में विराजती है। अपने उखड़े आलोचकों का भी इन्होंने आदर किया है। कितनी भी बुरी–भली बातें इन्हें कह दो, हंसकर रह जायेंगे।"[22] जीवन की हर फ्रिक को वह हंसकर उड़ा देते हैं। अद्‌भुत है उनका जीवन। त्रिलोचन ने अपार उपेक्षाएं और घृणाएं झेली हैं। वह अपनी पीड़ा और वेदना को अट्‌टहास में डुबा देते हैं। यह त्रिलोचन जैसे संत का ही काम है–

अट्‌टहास कर, अट्‌टहास कर, अट्‌टहास में

मन को गड़ने वाले दर्द डूब जाते हैं
संज्ञाप्लावी क्षण जीवन में जब आते हैं
तब सब कुछ बह जाता है, केवल उजास में
दिखलाई देता है। दुःखों का दुरतिक्रम घेरा
अट्टहास ही तोड़ सका है अभियानों में।"[23] (दिगंत)

त्रिलोचन ने अपने व्यक्तित्व के बारे में बहुत सी कविताओं में लिखा है। वह अपनी फटेहाली अपने पहनावे, अपने रहन–सहन सब कुछ को निःसंकोच अभिव्यक्त करते हैं। एक सॉनेट में लिखते हैं–

वही त्रिलोचन है वह–जिस के तन पर गंदे
कपड़े हैं, कपड़े भी कैसे–फटे लटे हैं
यह भी फैशन है, फैशन से कटे कटे हैं। (उस जनपद का कवि हूं)

"यह वही त्रिलोचन है जिसके तन पर गंदे कपड़े हैं, फटे–लटे। चंदे पर अवलम्बित जीवन की शान तो देखो– उठा हुआ सिर, चौड़ी छाती, लम्बी बाहें सधे कदम इतनी तेजी से चल रहा है कि टेड़ी मेढ़ी राहें मानों भय से सिकुड़ी जा रही हैं। धुन के पक्के इस आदमी की पहचान यह है कि–

जीवन इसका जो कुछ है पथ पर बिखरा है
तप–तप कर ही भट्टी में सोना निखरा है।"[24](उस जनपद का कवि हूं)

कुल मिलाकर यही है, त्रिलोचन! सादगी के प्रत्यक्ष प्रमाण। नम्रता और शिष्टता के मूर्त प्रतीक।

काव्य–व्यक्तित्व

त्रिलोचन की काव्य यात्रा शुरू होती है 'धरती' (काव्य संग्रह) से जो 1945 में प्रकाशित हुई थी। कर्म और संघर्ष को अपना पाथेय मानने वाला यह कवि उम्र के आखिरी पड़ाव तक सृजनतरत रहा जिसका प्रमाण है सन् 2004 में प्रकाशित उनका काव्य संग्रह 'जीने की कला'। जिसमें उनकी काव्य संवेदना जीवन और जनता के प्रति और मुखर हुई है। त्रिलोचन ने अपनी लम्बी काव्य यात्रा के दौरान विविध काव्य रूपों–सॉनेट, ग़ज़ल, रुबाइयों का प्रयोग तो किया ही गद्य में भी

उत्कृष्ट रचनाएं दी। उनकी एक डायरी 'रोज़नामचा' नाम से 1992 में तथा कहानियों का संग्रह 'देशकाल' 1986 में प्रकाशित हुआ। आलोचना लेखों का एक संग्रह भी 'काव्य और अर्थबोध' नाम से 1995 में प्रकाशित हुआ। त्रिलोचन के प्रकाश्ति काव्य संग्रहों का क्रम इस तरह से है–

धरती (1945)
गुलाब और बुलबुल (1956)
दिगंत (1957)
ताप के ताए हुए दिन (1980)
शब्द (1980)
उस जनपद का कवि हूं (1981)
अरधान (1983)
तुम्हें सौंपता हूं (1985)
अनकहनी भी कुछ कहनी है (1985)
फूल नाम है एक (1985)
चैती (1987)
सबका अपना आकाश (1987)
अमोला (1990)
मेरा घर (2002)
जीने की कला (2004)

"त्रिलोचन की कविता का अपना व्यक्तित्व है जो किसी गहरे दर्शन के सूत्र की मदद से यथार्थ को पहचानने और उसमें अर्थ भरने की कोशिश नहीं करता।"[25] त्रिलोचन की कविताओं का प्राण है सादगी और सहजता। जो उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। शमशेर त्रिलोचन की कविताओं का प्राण 'सहजता' में देखते हैं। वह त्रिलोचन के 'धरती' काव्य संग्रह की समीक्षा करते हुए लिखते हैं– "तुमने (त्रिलोचन की) धरती का पद्य पढ़ा है, उसकी सहजता प्राण है।"[26]

दरअसल त्रिलोचन की कविताओं को लम्बे समय तक आलोचकों ने उबाऊ और नीरस कहकर कविता के क्षेत्र से बाहर रखा और उन पर हमेशा एक तरह की उपेक्षा का रवैया रखा। इसी से आहत होकर त्रिलोचन ने लिखा भी था–

जो रसज्ञ हैं, इसे उन्हीं के लिए लिखा है,
जो अजीर्णग्रस्त हैं, कहेंगे इसमें क्या है। (अनकहनी भी कुछ कहानी है)

"त्रिलोचन की कविताओं में ऐसा कहीं कुछ नहीं जो चौंकाने वाला हो। इसमें न अकेलेपन की आयतित पीड़ा मिलेगी न किसी किस्म का दार्शनिक घोल।"[27] शिल्प की दृष्टि से भी यह बिंबों और अलंकरण से दूरी बनाकर चलती है। डा. गोबिंद प्रसाद इस बारे में लिखते हैं – "अनुछुए–अछूते और टटके बिंबों की ताक में रहना, नए–नए प्रतीक परिधान पहनाना और अत्याधुनिक मुहावरों से कविता को लैस करना इस कवि की आदत नहीं। त्रिलोचन कभी इस ओर गए ही नहीं।"[28] डॉ. गोबिंद प्रसाद के अनुसार – "वस्तुतः त्रिलोचन की कविता कड़े दुःख और संघर्षों के बीच निरंतर आस्था और एक अनाहत स्वर की कविता है। ... त्रिलोचन की कविता हिंदी की उस जातीय परम्परा का सहज विकास है, 'जिसकी सांसों को आराम नहीं था' और जिन्होंने जीवन समाज की कल्मष धोने में लगा दिया –

भाव उन्हीं का सब का है जो थे अभावमय
पर अभाव से दबे नहीं जागे स्व भावमय।"[29]

रामविलस शर्मा लिखते हैं– "हिंदी कविता की संघर्षशील परंपरा का निर्माण अभावग्रस्त कवियों ने किया है।"[30] यह आकस्मिक नहीं कि त्रिलोचन के प्रिय कवि तुलसी और निराला हैं जिनका जीवन 'दुःख ही जीवन की कथा रही' और जिन्हें 'पीस परिस्थितियों ने डाला'। त्रिलोचन ने अपने काव्य संस्कार इन्हीं महाकवियों से ग्रहण किया है। वह निराला के लिए लिखते हैं–

'अपनी राह चला। आंखों में रहे निराला
मानदंड मानव के तन के मन के, तो भी।
पीस परिस्थितियों ने डाला।' (दिगंत)

अस्तु त्रिलोचन की तरह त्रिलोचन की कविता ऊपरी तौर पर सामान्य, अपने लिबास में सादी– जन–जीवन जैसी लग सकती है, लेकिन भीतर से वे असाधारण ही होती हैं। इसी संदर्भ में नामवर सिंह की टिप्पणी प्रस्तुत है– " 'धरती' की जिस भाषा से 'चम्पा' की कली फूटी है, उसी ने आगे चलकर त्रिलोचन से नगई महरा की सृष्टि करायी, जिसमें गांव की पूरी संस्कृति मूर्तिमान हो उठती है। त्रिलोचन की कविता में साधारण जनों के बीच से उठाए हुए ऐसे चरित्र बहुत आए हैं। प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों और कहानियों में जैसी दुनिया रची है, कविता के क्षेत्र में बहुत कुछ वही काम त्रिलोचन ने किया है। वहां अमूर्त जीवन नहीं, हांड मांस के जीते जागते इंसान है, चित्र नहीं चरित्र हैं लड़ते–झगड़ते, हंसते, खीझते, नाचते–गाते, गिरते–पड़ते, फिर भी जीते जागते। 'चम्पा' और 'नगई महरा' के कविता होने में कुछ लोगों को संदेह है। संदेह इसलिए कि वे साधारण हैं। साधारण होने में ही उनकी असाधारणता। त्रिलोचन 'साधारण' के असाधारण कवि हैं।"[31]

केदारनाथ सिंह के अनुसार "त्रिलोचन की कविता अपने ऊपरी चरित्र के बेहर शांत, सरल और सहज दीख पड़ती है, पर इस शांत कविता के पीछे एक हलचल है, एक संघर्ष है, एक त्रासदी है।"[32] यथार्थवाद को अभिव्यक्त करने का उनका अपना अलग ढंग है। वह किसान जीवन के सुख–दुःख, संधर्ष को बहुत ही सहज ढंग से कहते हैं। उनकी एक कविता है 'सब्जी वाली बुढ़िया'। कविता बातचीत के लहजे में है–

"मेथी और पालक की दो हरी–हरी गट्ठियां/लहसुन और प्याज की चार–चार पोटियां/बुढ़िया कह रही थी ग्राहक से ले लो यह सब ले लो कुल पचास पैसे में। ग्राहक बोला– जो कुछ लेना था ले चुका/ यह सब क्या करूंगा/ रखने की चीज नहीं/ बुढ़िया ने सांस ली और कहा– दिन है ये ठंठ के/ ले लो तो मैं भी घर को जाऊं/ ग्राहक ने सुना नहीं और दाम चुकाकर चला गया/ मैं पास वाले से गोभी ले रहा था/ बुढ़िया से मैंने कहा– अम्मा, सारी

चीजें इकठ्ठे बांधकर मुझको दे दीजिए। बुढ़िया असीसती हुई चली गई।" (अरधान)

ऊपरी दृष्टि में यह छोटा सा प्रसंग लग सकता है। पर यहां त्रिलोचन 'दिन हैं ये ठंड के' द्वारा बुढ़िया की गरीबी को बहुत ही सहज ढंग से रेखांकित करते हैं। त्रिलोचन की यह यथार्थवादी दृष्टि उनके बहुत से सॉनेटों और कविताओं में देखी जा सकती है। त्रिलोचन के काव्य में दुःख पीड़ा, अवसाद, उपेक्षा, अभाव, संघर्ष सब कुछ है लेकिन उसे लेकर वह रुदन नहीं करते। "उसमें दुःख का प्रदर्शन नहीं है, न ही दर्शन है। दुख की घोषण तो दूर तक नहीं है। वह अपने लिए सहानुभूति नहीं चाहते। उनका दुख तो भीतर–ही–भीतर सब कुछ को सहता हुआ चुपचाप दुर्निवार बहता है।"[33]

'बाढ़ में जो
कहीं न जा सकी
जलरुद्ध रही वही दूब रहा हूं।' (ताप के ताए हुए दिन)

त्रिलोचन के काव्य में "दुख–पीड़ा, अवसाद– करुणा, छलना–प्रवंचना, उपेक्षा–अपमान, खिन्नता– अभाव सब मिलेगा लेकिन इन सब स्थितियों में अपराजेय बने रहने का भाव कभी नहीं मरता। और इस अपराजेयता में निश्चलता, धैर्य और संयम उनके काव्य व्यक्तित्व को और भी स्पृहणीय बना देता है। इसलिए उनकी कविताओं से भी बड़ा है उनका व्यक्ति। कितना जीवट, अपने पर अद्‌भुत आत्मविश्वास। आंखों में अतीत का संघर्ष और दुःखों की भट्टी में तपकर निखरे हुए सोने से कुंदन बन जाने की चमक। एक अनाहत शब्द की गूंज उनके काव्य–व्यक्तित्व में व्याप्त है।"[34] जीवन में दुःख आए तो आए वह अपने कर्मपथ पर चुपचाप उत्साह के साथ बढ़ते जाते हैं–

'राह में चलता रहूंगा
ठोकरें सहता रहूंगा
गिर पडूंगा, फिर उठूंगा
और फिर चलता रहूंगा
ठोकरों के हार से, कोई डरेगा क्या'[35]

त्रिलोचन की कविताओं में जीवन के प्रति गहरी आस्था है। जीवन के प्रति यह आस्था ही उनके दुख को निराशा में बदलने से बचाती है। यहां दुख और अवसाद का अवसान करुणा में होता है, मायूसी में नहीं। यह करुणा और कुछ नहीं जीवन के प्रति उनकी संवेदनशीलता ही है। इसी संदर्भ में मलयज लिखते हैं– "उसके पास एक गुण है– करुणा, जिसमें उसकी अपनी और दूसरों की कुंठा और निराशा घुल जाती है और उसे दारुण अकेलेपन की उस यातना से बचा लेती है जो आज के आधुनिक मनुष्य की नियति बनती जा रही है। उसे इस करुणा में एक दृष्टि मिलती है, दूसरों के भीतर झांक सकने की, और साथ ही एक सामर्थ्य तम से लड़ते रहने, उजाले की विजय की प्रतीक्षा करते रहने की।"[36] उनकी यह करुणा दृष्टि जनजीवन से आत्मीयता स्थापित करती है। नगई–महरा, भोरई केवट, सुकनी, चम्पा या सब्जी बेचने वाली बुढ़िया जैसे ढेरों चरित्रों के माध्यम से वे भारत के किसान, मजदूरों और संघर्षशील जनता की मुंह से बोलती तस्वीर सहज रूपों में प्रस्तुत करते हैं। कठिन धूप में परिश्रम करते हुए किसान दम्पती का चित्र कितनी सहजता और आत्मीयता के साथ आंकते हैं, देखिये–

है धूप कठिन सिर–ऊपर
थम गयी हवा है जैसे
दोनों दूबों के ऊपर
रख पैर सींचते पानी
उस मलिन हरी धरती पर
मिलकर वे दोनों प्रानी
दे रहे खेत में पानी। (धरती)

कवि त्रिलोचन अपने विपुल शास्त्रज्ञान और घुमक्कड़ स्वभाव के कारण रहस्यदर्शी संत सरीखे लगते होंगे पर उनकी कविता में किसी भी तरह के रहस्यवाद, कलावाद की छाया दूर–दूर तक नहीं है। वह स्पष्ट शब्दों में कहते हैं–

मैं जीवन का चित्रकार हूं चित्र बनाता
घूम रहा हूं, मन–ही–मन कल्याण मनाता। (दिगंत)

त्रिलोचन की कविता का व्यक्तित्व पूरी तरह से जीवनाभिमुख और लोक सम्पृक्त है। "मानव जीवन के प्रति आस्थावान त्रिलोचन जीवन के मधुमय रस की मादकता से उबरना ही नहीं चाहते।"[37] 'जीवन की शराब' शीर्षक सॉनेट की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं–

'मैं इस जीवन की शराब को पीते–पीते
वर्षों का पथ क्षण की छोटी–सी सीमा में
तय करता चुपचाप आ रहा हूं। अनजाने
और अपरिचित चेहरे अपने–जैसे जीते
जीर्ण–शीर्ण मिलते हैं, मैं उनका कर थामे
देता हूं जीवन, जीवन के मधुमय गाने। (शब्द)

त्रिलोचन की काव्य संवेदना का एक धरातल और है–प्रकृति। "जीवन के प्रेमी त्रिलोचन प्रकृति में भी जीवन ही देखते हैं, बल्कि प्रकृति में उनकी दृष्टि वहीं जाती है जहां जीवन दिखता है।"[38] कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

'मेमने कुदकते हैं
जाड़े की धूप को जीवन के खेल से
आंक–आंक देते हैं'। (अरदान)

या –

'चैती अब पककर तैयार है, खेतों के रंग बदल गये हैं
मटर उखड़ रही है, गेहूं जौ खड़े हैं, हवा में झूम रहे हैं। (चैती)

प्रकृति का सहज उल्लास इन कविताओं में तो है ही ग्राम्य जीवन भी सहज रूप से यहां उपस्थित हुआ है। त्रिलोचन प्रकृति के पेड़ पौधें, अमराई, पशु–पक्षी, हवा, मिट्टी आदि के साथ न केवल तादात्मय स्थापित करते हैं वरन इनमें मौजूद जीवनगत तत्वों से रूबरू होकर उसकी पहचान करते हुए से लगते हैं। उनकी कविताओं में प्रकृति के साथ लोक जीवन घुल–मिल गया है। "उनकी दृष्टि के दायरे में लोक मानव अपने कर्म के साथ उपस्थित तो है ही, गाय, बकरी, कुत्ते, अमराई, नाव आदि भी जीवन–जगत में लोक रंग भरते हैं।"[39]

त्रिलोचन गंवई कवि की सहज संवेदना के द्वारा प्रकृति को, जीवन को, मानवीय संघर्ष को जितनी आत्मीयता से अपनाते हैं, वह अद्‌भुत है। लोक जीवन की व्याप्ति त्रिलोचन की प्रेम कविताओं में भी देखने को मिलती है। 'अरघान' संग्रह की 'परदेशी के नाम पत्र' हो या 'ताप के ताए हुए दिन' की यह कविता जिसमें एक श्रमिक अपनी पत्नी के लिए कहता है–

'धीरज धरो, आजकल करते तब आऊंगा
जब देखूंगा अपने घर कुछ कर पाऊंगा।'

अथवा 'फूल नाम है एक' संग्रह में सहधर्मिणी को लक्ष्य करके लिखी गई यह पंक्तियां –

'मेरे मन का सारा शून्य भरा है
तुमने अपनी सुधि से। मेरे दुःख की मारी
तुम भी हो।'

इन कविताओं में प्रेम वायवीयता से ऊपर उठकर सामाजिक संदर्भों में व्याप्त है। यहां साधारण जनों के प्रेम का यथार्थ चित्रण हैं। "यह प्रेम जीवन–जगत से दूर एकान्त में नही ले जाता। वह जीवन की लय पैदा करता है, जगत–जीवन का प्रेमी बनाता है। यहां प्रेम शौक नहीं है, वह जीवन की अनिवार्यता है।"[40] त्रिलोचन कहते हैं–

'आज मैं अकेला हूँ
अकेले रहा नहीं जाता
जीवन मिला है यह
रतन मिला है यह
धूल है
कि फूल में
मिला है। तो
मिला है यह
मोल तोल इसका
अकेले कहा नहीं जाता। (धरती)

"जीवन की कठिनाइयों से यह अकेलापन जब और गहरा हो जाता है तब लगता है कि 'बांह गहे कोई, लहरों में साथ रहे कोई।'"[41] त्रिलोचन के यहां प्रेम कविताओं में साहचर्य की भावना तो है ही अनुभूति में गहराई और निश्छलता है।

त्रिलोचन की काव्य भाषा भी उन्हीं की तरह सहज और सरल है। अलंकृति, बिंबों, प्रतीकों से दूर उनकी काव्य भाषा लोकगीतों की शैली अपनाती है। उसमें बोलचाल का लहजा है। उसके मुहावरे और शब्द लोकजीवन से लिए गए हैं। "त्रिलोचन जी की कविता का स्वर गांव में रहने वाली जनता के मानसिक धरातल से ही आता है और व तुलसीदास से भाषा सीखते हैं– 'तुलसी बाबा भाषा मैंने तुमसे सीखी। मेरी सजग चेतना में तुम रमे हुए हो।' त्रिलोचन जी ने अपने अनेक गीतों में चौपाई छंद के अनुशासन को अपनाकर अपने पथ को नया रूप और नयी लय दी है।"[42]

त्रिलोचन की काव्य भाषा में जीवन की लय है। उनके सॉनेट तथा गीतों में इस लय को देखा–सुना जा सकता है। यथा–

क्या जाने
कौन राम छाती में लगता है अकुलाने
इंद्रधनुष सी लहराती है पत्ती–पत्ती। (दिगन्त)

कुल मिलाकर "त्रिलोचन की कविता की दुनिया एकदम दूसरी है। उसमें गांव की जिंदगी की वास्तविकताएं और आकांक्षाएं हैं, जनजीवन के चित्र हैं और गांव की बोली–ठोली, लाग–लपेट, टेक, भाषा, मुहावरा, इंगित आदि है। किसान–जीवन और जातीय मन का यह काव्य नयी कविता के आधुनिकतावाद का प्रतिपक्षी और प्रतिरोधी हैं।"[43]

संदर्भ

1. कविता का वर्तमान, खगेन्द्र ठाकुर।
2. कविता के बीच से, दिविक रमेश, किताबघर, नई दिल्ली, सं. 1992, पृ. 62।
3. त्रिलोचन के काव्य, राजू. एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985, पृ. 15 से उद्धृत।
4. वही, पृ. 15 से उद्धृत।
5. वही, पृ. 16 से उद्धृत।
6. वही, पृ. 18 से उद्धृत।
7. कविता के बीच से, दिविक रमेश, किताबघर, नई दिल्ली, सं. 1992, पृ. 62।
8. छवि संग्रह, त्रिलोचन, रजनी मेहंदीरत्ता, महात्मागांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, सं. 2003, पृ. 3।
9. कविता के बीच से, दिविक रमेश, किताबघर, नई दिल्ली, सं. 1992, पृ. 63।
10. त्रिलोचन के काव्य, राजू.एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985, पृ. 24 से उद्धृत।
11. छवि संग्रह, त्रिलोचन, रजनी मेहंदीरत्ता, महात्मागांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, सं. 2003, पृ. 4।
12. त्रिलोचन के काव्य, राजू.एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985, पृ. 27 से उद्धृत।
13. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 450 से उद्धृत।
14. रामदरश मिश्र, धरती के कवि त्रिलोचन, सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 149।
15. शिवप्रसाद सिंह, पौधानिर्वाक् खड़ा है, सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 447।
16. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 452।
17. शिवप्रसाद सिंह, पौधानिर्वाक् खड़ा है, सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 445।
18. वही, पृ. 446

19. त्रिलोचन के काव्य, राजू.एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985, पृ. 20 से उद्धृत।
20. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 448 से उद्धृत।
21. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 146 से उद्धृत।
22. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 440 से उद्धृत।
23. दिगंत, त्रिलोचन शास्त्री, जगत शंखधर, वाराणसी, 1957, पृ. 37।
24. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 197–198 से उद्धृत।
25. वही पृ. 436।
26. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 232 से उद्धृत।
27. वही, पृ. 229 से उद्धृत।
28. वही, पृ. 232 से उद्धृत।
29. वही, पृ. 11 से उद्धृत।
30. रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठ भूमि, रामविलाश शर्मा, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1990, पृ. 273।
31. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 150 से उद्धृत।
32. वही, पृ. 157 से उद्धृत।
33. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 16 से उद्धृत।
34. वही, पृ. 16–17 से उद्धृत।
35. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 217 से उद्धृत।
36. वही, पृ. 50 से उद्धृत।
37. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 526 से उद्धृत।
38. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 85 से उद्धृत।
39. सापेक्ष, 38, जुलाई सितम्बर, 1997 दुर्ग. (म.प्र.) पृ. 527 से उद्धृत।
40. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 156 से उद्धृत।
41. वही, पृ. 156 से उद्धृत।
42. त्रिलोचन संचयिता, सं– ध्रुव शुक्ल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 2002, पृ. 14–15।
43. त्रिलोचन के बारे में, गोबिंद प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1994, पृ. 149 से उद्धृत।

अध्याय : दो

हिंदी ग़ज़ल की परम्परा और उसका स्वरूप

हिंदी ग़ज़ल की परम्परा और उसका स्वरूप

"ग़ज़ल, जैसा कि सभी जानते हैं ईरानी संस्कृति कस वह खास तोहफा है जिसने हर खासो आम को अपनी गिरफ्त में लेकर हमेशा–हमेशा के लिए उसके दिल में जगह बना ली है। ग़ज़ल की लोकप्रियता और साहित्य में उसकी विधागत भूमिका निर्विवाद है।"[1] यह एक ऐसी काव्य विधा है जो शास्त्रीय नियमों में अनुशासित होने के बावजूद रचनकारों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है तथा पाठक एवं श्रोता आत्मविभोर होकर उसका रसास्वादन करते रहे हैं।

दरअसल ग़ज़ल काव्य की एक ऐसी विधा है जिसमें लताफत के साथ नफ़ासत भी पायी जाती है। इसके कम से कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कहने की ख़ूबी है। इसीलिए तमाम शायरों ने इसे बड़े प्यार और आत्मीयता से अपनाया है। "काव्य की विधाओं में ग़ज़ल ही एकमात्र ऐसी विधा है जिसने पुराने दौर में अपना मक़ाम कायम किया था और आज भी अपने मकाम पर बरकरार रही है।"[2]

ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा की काव्य विधा है। ग़ज़ल शब्द भी अरबी का ही है जिसका अर्थ है– औरतों से बातें अथवा औरतों से बातें करना। फारसी में भी इस ग़ज़ल शब्द को – बाज़नान, गुफ्तगू करदन से व्याख्यायित किया गया है जिसका अर्थ है– स्त्रियों से अथवा महबूब से बातें करना। डा0 विनय वाईकर के अनुसार "ग़ज़ल शब्द स्त्रीलिंग है। प्रस्तुत शब्द मूलतः अरबी का ज्यों का त्यों फारसी से भारत आया। ग़ज़ल का अर्थ है औरत या औरत के बारे में कहने का तरीका।"[3] सैयद एहतिशाम हुसैन भी लिखते हैं– "यह अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है, स्त्री से बातें करना।"[4] मजहर इमाम के अनुसर – "ग़ज़ल के माने औरत या महबूब से बातें करना है। आम तौर पर ग़ज़ल में जो ख्यालात अदा किये जाते हैं वो मोहब्बत और हुस्न के बारे में होते हैं। लेकिन ज़रूरी नहीं कि ग़ज़ल महबूब और महबूब से मुताल्लिक कैफियात ही को पेश करें। ग़ज़ल में जिन्दगी और कायनात के दूसरे मुजाहिल और दूसरे मुताल्लकात को हमेशा पेश किया जाता रहा है। दुनिया को कोई ऐसा मौजू नहीं जो ग़ज़ल को जुबान में रम्ज और इमायत के साथ पेश न किया गया हो। अलबत्ता यह कहा जा सकता है कि जिस

तरह औरत या महबूब से गुफ़्तगू करते हुए नरमी, यताफत और नफासत का पूरा खयाल रखा जाता है इसी तरह ग़ज़ल की जुबान नरमी, लताफत और नफासत का होना जरूरी है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि ग़ज़ल की अपनी तहजीब होती है और यही तहजीब उसको शायरी की दूसरी किस्मों से अलग करती है।"[5]

इससे एक आम बात सामने आती है कि ग़ज़ल शब्द का अर्थ है औरत से बातचीत करना जाहिर सी बात है कि औरत से बातचीत करते हुए नरमी का ख्याल रखा जाता है। इसीलिए शायद नाजुक भावों को अभिव्यक्त करने वाली काव्य की इस विधा को ग़ज़ल नाम से अभिहित किया गया है।

कुछ शायरों के अनुसार ग़ज़ल का अर्थ "उस कराह से है जो गजाला (हिरन) तीर चुभने के बाद बेकसी के आलम में निकालता है।"[6] इसी कारण ग़ज़ल में एक अजीब सी कसक, वेदना और टीस रहती है। ज्ञान प्रकाश विवेक के अनुसार – "ग़ज़ल शब्द गजाला से बना है गजला हिरन के बच्चे को कहा जाता है। शिकारी जब हिरन के बच्चे का शिकार करते थे। तीर लगने के पश्चात उस बच्चे का क्रंदन यानी वेदना अथवा आर्तनाद अंततः ग़ज़ल के रूप में प्रसिद्ध हुआ। ग़ज़ल यानी वेदना अथवा आर्तनाद। ग़ज़ल का यह एक शाब्दिक अर्थ है।"[7]

सरदार मुजावर भी लिखते हैं– " 'गजाला' से गजल शब्द बना है। गजाल का अर्थ है हिरन। हिरन का जो छोटा बच्चा होता है उसको गजाला कहा जाता है। गजाल इस शब्द में ही एक तरह की खूबसूरती और नजाकत भरी हुई है।"[8]

सामान्यतः कह सकते हैं कि जिस तरह से हिरनी के शावक की पुर–अश्क आंखों में एक विशेष प्रकार की करुणा का भाव निहित होता है उसी प्रकार ग़ज़ल नामक रचना में वैसे ही अहसासात, जज्बात और तसव्वुरात का उपयोग होता है।

यह अलग बात है कि ग़ज़ल नामक काव्य विधा ने अपने ऐतिहासिक विकास क्रम में अपने परंपरागत अर्थों अर्थात् स्त्रियों से या स्त्रियों के विषय में बात करना, का अतिक्रमण कर दुनिया–जहान के तमाम सारे विषयों को समेटा है और

अपने शिल्प के अनुरूप खूबसूरती से उसकी अभिव्यक्ति कर रही है। शिव कुमार मिश्र के शब्दों में – "अब वह किसी एक भाव–भूमि या विषय क्षेत्र की चीज़ न रहकर आदमी की जिंदगी की मुकम्मल तस्वीर बन चुकी है।"[9]

ग़ज़ल का उद्‌भव

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ग़ज़ल विधा की व्युत्पत्ति पर गौर करें तो यह अरबी के कसीदे से आई। डा0 विनय वाईकर के अनुसार "अरबी भाषा में कसीदा नामक एक काव्य विधा है। कसीदा से पहले एक छोटा सा दो या चार पंक्तियों का प्रणय गीत कहने की परम्परा थी। इन पंक्तियों को तश्बीब कहा जाता था। अरबों ने इस्लाम को कबूल किया और ईरान पर कब्जा किया। लड़ाई के बाद सांस्कृतिक लेन–देन में अरबों का कसीदा ईरान गया है और देखते–देखते फारसी कवियों में खूब मशहूर हुआ। फारसी कवि जो सौंदर्योपासक थे, विद्वान थे, अनुभवी थे और जीवन के हर पहलू को परखते थे, कसीदा के तश्बीब पर फिदा हो गये। उन्होंने तश्बीब को एक अलग काव्य विधा माना और अपनी प्रतिभा से समृद्ध बनाया। इसी काव्य विधा को आज हम लोग ग़ज़ल नाम से पुकारते हैं।"[10]

डा0 माजदा हसन भी लिखती हैं– "तक़रीबन चौदह सौ वर्ष पहले, अरब के सामंती समाज में तत्कालीन बादशाहों और अमीरों की विरुदावली बखान के लिए अवतरित, काव्यरूप, तश्बीब या कसीदी से प्रेम और श्रृंगार संबंधी शेरों को निकालकर एक जगह इकट्‌ठा कर देने के परिणामस्वरूप ही ग़ज़ल का प्रादुर्भाव हुआ।"[11]

जाहिर है कि अरबी में ग़ज़ल का कोई स्वतंत्र स्थान नहीं था लेकिन फ़ारसी साहित्य में आने पर ग़ज़ल विधा ने अपना स्वतंत्र रूप और चरित्र गढ़ लिया था। ग़ज़ल में प्रणय को आधार बनाकर फारसी कवियों ने जो रचनाएं की उसमें विरह और सूक्ष्मता के समावेश ने उसे नई ऊँचाइयों पर पहुंचा दिया।

इस प्रकार यह बात स्पष्ट होती है कि ग़ज़ल किसी न किसी रूप में अरब से होते हुए ईरान पहुंची और ईरानी कवियों ने फारसी में ग़ज़लें लिखी। फारसी से

ग़ज़लों का आगमन उर्दू में हुआ और फिर फारसी उर्दू ग़ज़लों की देखा देखी में हिंदी में ग़ज़लों की अवतारणा हुई।

ग़ज़ल का स्वरूप

"ग़ज़ल ऐसे शेरों के संकलन को कहते हैं जो किसी शायर द्वारा एक छंद में तथा एक रदीफ काफिये में ढाले गए हों और जो एक इकाई के रूप में उस शायर द्वारा पेश किए जाएं।"[12] ग़ज़ल में कम से कम पांच शेर होते हैं। यहां संक्षेप में ग़ज़ल के अलग–अलग तत्वों का विवेचन किया जा रहा है–

1. शेर

"शेर अरबी भाषा का शब्द है। इसका शाब्दिक अर्थ केश या बाल है। जिस प्रकार किसी तरुणी की सुदंरता की अभिवृद्धि में केश सहायक होते हैं वैसे ही किसी ग़ज़ल के भाव सौंदर्य के लिए उसके शेरों का जानदार होना आवश्यक है।"[13.] ग़ज़ल शेरों से बनती हैं हर शेर में दो पंक्तियां होती हैं। शेर की हर पंक्ति को मिसरा कहते हैं। "ग़ज़ल की खास बात यह है कि उसका प्रत्येक शेर अपने आप में एक सम्पूर्ण कविता होती है और उसका संबंध ग़ज़ल में आने वाले अगले–पिछले अथवा अन्य शेरों से हो, यह जरूरी नहीं।"[14] शेर के लिए विषयों का कोई बंधन नहीं है। सामाजिक, राजनीतिक, वेदना एवं निराशा, प्रेमभाव आदि कई विषयों को लेकर शेर प्रस्तुत किए जा सकते हैं। कह सकते हैं कि शेर ग़ज़ल में प्रयुक्त आधारिक इकाई है, जिसके संक्षिप्त आयाम में एक स्वतंत्र भाव प्रकाशन की क्षमता निहित रहती है।

2. मतला

ग़ज़ल के पहले शेर को मतला कहते हैं। मतला का शाब्दिक अर्थ है उदय होना। इसलिए मतले से ग़ज़ल आरम्भ की जाती है। मतले की दोनों पंक्तियों में रदीफ और क़ाफ़िया एक समान होता है। मतले के द्वारा ही ग़ज़ल के बहर–वज़न तथा काफिया– रदीफ का निर्धारण किया जाता है। त्रिलोचन की एक ग़ज़ल का पहला शेर प्रस्तुत है जिसे मतला कहा जाएगा–

TH-15252
Jawaharlal Nehru University Library

'बात अपनी नहीं कहोगे क्या
मन की लहरों में ही बहोगे क्या?

इस शेर मे 'कहोगे', 'बहोगे' काफिया है और 'क्या' रदीफ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। काफिया और रदीफ मतले की दोनों पंक्तियों में एक ही होती है जबकि उसकी ग़ज़ल के अन्य शेरों की दूसरी पंक्तियों में वह एक समान होती है, पहली पंक्ति भिन्न होती है।

3. मक़ता

ग़ज़ल के आखिरी शेर को मकता कहा जाता है। इसमें शायर अपने उपनाम को पेश करता है जिसे तखल्लुस कहा जाता है। त्रिलोचन की उपर्युक्त ग़ज़ल का मक़ता है–

'पूछते हैं जो वह त्रिलोचन को
डाह की आग में दहोगे क्या।'

4. रदीफ़

मतला की दोनों पंक्तियों के अन्त में तथा मतला के बाद के प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति में निरंतर आने वाले शब्द या शब्द समूह को रदीफ कहते हैं। रदीफ कभी बदलती नहीं। "ग़ज़ल के हर शेर में तथा काफिये के बाद, निश्चित क्रमानुसार दोहराए जाने वाले अक्षर, शब्द या शब्द–समूह को रदीफ़ कहते हैं।"[15]

बात मेरी नहीं मानी नहीं मानी तुम ने
जी में जो बात बसी थी वही ठानी तुम ने। (गुलाब और बुलबुल)

यहां पहले मिसरे में 'तुम ने' है ओर दूसरे मिसरे में भी 'तुम ने' है ये दोनों रदीफ़ हैं।

5. काफ़िया

रदीफ से पहले आने वाला शब्द या स्वर काफिया कहलाता है। मतला की दोनों पंक्तियों के रदीफ़ से पहले का शब्द या स्वर क़ाफ़िया कहलाता है। मतला के बाद प्रत्येक शेर की दूसरी पंक्ति में काफिया का निर्वाह किया जाता है। डा0 रोहिताश्व अस्थाना के मतानुसार "क़ाफ़िया का तात्पर्य तुक से होता है। ग़ज़ल के शेरों में रदीफ से पहले जो अंत्यानुप्रास युक्त शब्द आते हैं और जिनका प्रयोग तुक मिलाने की दृष्टि से किया जाता है, काफिया कहलाता है।"[16] काफिया ही ग़ज़ल को एक सूत्र में बांधता है। उदाहरण स्वरूप त्रिलोचन की एक ग़ज़ल प्रस्तुत है–

धरती खुशी मना तू बरसात आ गई है
जो बात कल नहीं थी वह बात आ गई है।
अपनी भी फ़िक्र कुछ कर हारा थका हुआ है
तुझ को विराम देने यह रात आ गई है।
तू चाहता था जिसको जिसके लिए विकल था
वह सिद्धि देख उठ कर अब हाथ आ गई है।
तप ताप और कितना भू का अटल रहेगा
आषाढ़ की मनोहर बारात आ गई है।
बैठा हुआ है क्यों तू असहाय सा त्रिलोचन
तू जिसको ताकता था वह घात आ गई है। (गुलाब और बुलबुल)

इस ग़ज़ल में बरसात, बात, रात, हाथ, बारात, घात आदि शब्द काफिये के रूप में तथा 'आ गई है' रदीफ़ के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

6. बह्र (छंद)

ग़ज़ल एक ही बहर में होती है। पूरी ग़ज़ल का किसी एक ही लयखंड में रचा जाना अनिवार्य होता है। अतः ग़ज़ल के प्रत्येक शेर का दूसरे शेर से समतोल होना आवश्यक होता है। इसके लिए जरूरी है कि शेर की दोनों पंक्तियां ग़ज़ल के लिए निश्चित किए गए वज़न के अनुरूप हों। जब तक शेर की दोनों पंक्तियां समतोल नहीं होगी, तब तक शेर नहीं बनेगा।

हिंदी ग़ज़ल का उद्भव

ग़ज़ल हिंदी की अपनी चीज नहीं है। वह फारसी उर्दू के जरिए हिंदी में आई है। हिंदी में ग़ज़ल का उद्भव कब हुआ? इस संदर्भ में अभी तक एक राय नहीं बन पाई है। अधिकांश विद्वान अमीर खुसरो को पहला हिंदी ग़ज़लकार मानते हैं। इस पर विद्वानों में मतभेद हैं। डा. नरेश के अनुसार "अमीर खुसरो या कबीर की रचनाओं में प्राप्त होने वाली ग़ज़लों को हम हिंदी ग़ज़ल की शुरूआत नहीं कह सकते क्योंकि न अमीर खुसरो (1253–1325) और कबीर (1398–1494) के बीच की लगभग डेढ़ शताब्दी के साहित्य में ग़ज़ल प्राप्त होती है और न कबीर से लेकर भारतेंदु युग (1870–1905) तक की लगभग पांच शताब्दियों में ग़ज़ल के दर्शन होते हैं। .... दूसरी बात यह कि अमीर खुसरो मूलतः हिंदवी भाषा के कवि थे। ... उनकी फारसी हिंदवी मिश्रित ग़ज़लों को हिंदी ग़ज़ल कहना इसलिए भी उचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि भाषा की दृष्टि से उनका हर शेर आधा तो फारसी का ही है। कबीर के विषय में वह कहते हैं कि अपने युग में प्रचलित फारसी काव्य विधा से प्रभाव ग्रहण करके यदि कबीर ने ग़ज़ल शैली में कुछ रचनाएं रची भी हैं, तो उनमें ग़ज़ल की मूलभूत अपेक्षा शेरों में विषय–भिन्नता अनुपलब्ध है।"[18]

अमीर खुसरो की ग़ज़लों को फारसी और हिंदी में मिश्रित रचना के रूप में अधिकांश आलोचकों ने रखा है। वह उन्हें शुद्ध हिंदी का ग़ज़लकार नहीं मानते। खुसरो की एक रचना है–

> जे हाले मिस्कीं, मकुन तग़ाफुल दुराए नैना बनाए बतियां
> के ताबे–हिज्रां न दारम–ए–जां, न लेहू काहे लगाए छतियां
> यकायक अज़दिल, दो चश्म–जादू बसद फरेबम बबुर्द तस्कीं
> किसे पड़ी है के जा सुनावे पियारे पी को हमारी बतियां

इस ग़ज़ल पर ज्ञान प्रकाश विवेक की राय है –"हिंदी और फारसी के मिश्रण से अमीर खुसरो की यह ग़ज़ल एक तवारीखी ग़ज़ल बन गई लेकिन हिंदी ग़ज़ल परंपरा से जोड़कर देखना गैर मुनासिब होगा।"[19]

दीनेश शुक्ल इस बारे में लिखते हैं– "भारत में ग़ज़ल सर्वप्रथम दक्षिण के कवियों ने शुरू कीं हिंदवी में ग़ज़ल को प्रचलित करने वाले कवियों ने शेरों कीएक पंक्ति हिंदी में तथा दूसरी फारसी भाषा में कही। अमीर खुसरो तथा उनके समकालीन कवियों में भी साधारणतया यही रूझान दिखाई देता है।"[20] अमीर खुसरो के बाद हिंदी में ग़ज़ल की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवि के रूप में कबीर का नाम लिया जाता है। इस पर भी मतभेद है। ज्ञान प्रकाश विवेक के अनुसार "कबीर क्रांतिकारी संत कवि थे। उनकी वाणी में ओज था... कबीर की फितरत में नहीं था कि वे ग़ज़ल की नफासत को बोझ की तरह ढोते। उन्होंने दो–तीन ग़ज़लें, फकीराना मौज में लिख दी होंगी।"[21] इसी तरह वह हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को बहुत पीछे तक ले जाने पर आपत्ति जताते हैं। उनका मत है कि – "हिंदी ग़ज़ल परंपरा बहुत बाद की है। ... उर्दू ग़ज़ल की सुदीर्घ परम्परा है जो वली दकनी (1648–1744) से होते हुए कली कुतुबशाह, मीर तकीमीर (1723–1810), ग़ालिब (1779–1869), मोमिन (1809–1852), इकबाल (1873–1938), हसरत मोहानी (1880–1951), ज़िगर मुरादाबादी (1890–1960), फिराक गोरखपुरी (1896–1982) तथा फ़ैज़ (1911–1984) तक निरंतर विकसित होती चली गयी है। हिंदी ग़ज़ल में बहुत बाद में भारतेंदु, निराला, शमशेर, बलबीर सिंह रंग, हरिऔध आदि की ग़ज़लें सामने आती हैं।"[22]

लेकिन विद्वानों का एक वर्ग ऐसा भी है जो अमीर खुसरो से ही हिंदी ग़ज़ल का प्रारम्भ मानता है। गोपाल दास नीरज लिखते हैं– "मैं अमीर खुसरो से ही हिंदी ग़ज़लों का उद्भव मानता हूं क्योंकि अमीर खुसरो सिर्फ उर्दू फारसी के ही कवि नहीं, वे हिंदी के भी हैं।"[23] जहीर कुरेशी के मत में "तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हजरत अमीर खुसरो को ही पहला हिंदी ग़ज़लकार माना जा सकता है।"[24] डा0 हनुमंत नायडू, दीनेश शुक्ल, आदि भी अमीर खुसरो से हिंदी गजल का प्रारम्भ मानते हैं।

हिंदी ग़ज़ल का उद्भव किसके द्वारा और सबसे पहले किस युग में हुआ इस बात पर विवाद हो सकता है पर इस बात में कोई दो राय नहीं कि अमीर

खुसरो और कबीर दोनों की ही ग़ज़लों में खड़ी बोली का दर्शन होता है। इनकी ग़ज़लों में लयात्मकता है जो ग़ज़ल का प्रधान गुण है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि इनकी ग़ज़लों के द्वारा किसी परंपरा का सूत्रपात नहीं होता। इन दोनों की ग़ज़लों का एक–एक उदाहरण दिया जा रहा है–

'जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिंता उतर,
ऐसा नहीं कोई अजब, राखे उसे समझाय कर।'[25] (अमीर खुसरो)

'हमन हैं इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आजाद या जग से हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछुड़े हैं पियारे से भटकते दर–ब–दर फिरते,
हमार यार हैं हम में हमन को इंतजारी क्या।'[26] (कबीर)

कबीर के बाद भारतेंदु युगीन कवियों की रचनाओं में ग़ज़ल उपलब्ध होती है। भारतेंदु हरिशचन्द्र आधनिक युग के प्रवर्तक थे। उन्होंने कविता, निबंध के अलावा ग़ज़लें भी लिखी। 'ग़ज़लें वो 'हरिशचन्द्र' तथा 'रसा' दो नामों से लिखते थे। उनकी ग़ज़लें बेशक प्रेम परक है लेकिन ग़ज़लियत, लोच और नाद सौंदर्य उत्तम है। प्रस्तुत है उनकी एक ग़ज़ल–

'दिल मेरा ले गया दग़ा करके
बेवफा हो गया वफ़ा करके
हिज्र की शब घटा ही दी हमने
दास्तां जुल्फ़ की बढ़ा करके
वक्ते–रुख्सत जो आए वाली पर
खूब रोये गले लगा करके
दोस्तो, कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है रसा–रसा करके'।[27]

इस ग़ज़ल के मक्ते में 'रसा' तख़्ल्लुस (उपनाम) का प्रयोग भारतेंदु ने किसी उस्ताद शायर की तरह किया है। "ग़ज़ल बेशक हिंदी में लिखी गई है लेकिन प्रभाव उर्दू ग़ज़ल का है। उर्दू ग़ज़ल में प्रेमिका से बिछुड़ने की जो वेदना है, वह

यहां भी है।"[28] उनकी अन्य ग़ज़लों में भी श्रृंगार रस और प्रेम प्रसंगों की प्रधानता है। यथा–

'गले मुझको लगा लो ए दिलदार होली में,
बुझे दिल की लगी भी तो एक यार होली में।'[29]

भारतेन्दु की ग़ज़लों में उर्दू शब्दावली का खूब प्रयोग होता है जिससे जाहिर होता है कि वह अपने समकालीन उर्दू शायरों से प्रभावित होकर ग़ज़ल लिख रहे थे। हालांकि उनकी ग़ज़लों में शिल्पगत त्रुटियां हैं और उनका विषय भी सीमित है। इसके बावजूद हिंदी में ग़ज़ल लिखने का वातावरण बनने लगा था।

भारतेंदु हरिश्चन्द्र के अतिरिक्त उस समय में प्रताप नारायण मिश्र, चौधरी प्रेमधन ने भी हिंदी में ग़ज़लें लिखी। इनकी ग़ज़लों में भी उर्दू का प्रभाव झलकता है। यथा–

'तेरे इश्क में हमने दिल को जलाया
कसम सर की तेरे मज़ा कुछ न आया
नजर खार की शक्ल आते हैं सब गुल
इन आंखों में जब से तू आकर समाया।'[30] (चौधरी प्रेमधन)

भारतेंदु कालीन ग़ज़लों पर डा0 नरेश की टिप्पणी है– "भारतेंदु तथा उनके समकालीन हिंदी कवियों ने वास्तव में हिंदी में ग़ज़ल नहीं कही है बल्कि यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वे भी उर्दू वालों की तरह ग़ज़ल कह सकते हैं।"[31]

द्विवेदी युग में भी ग़ज़ल कहने की कोशिशें जारी रहीं। श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने का प्रयास किया।

इस युग के ग़ज़लों में प्रेम, श्रृंगार के अतिरिक्त राष्ट्रीय भावनाओं से भरी हुई ग़ज़लें भी मिलती हैं। श्रीधर पाठक (1860–1922) की खड़ी बोली में रची हुई एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है,
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है।
कभी नई तान प्रेममय है कभी प्रकम्पन कभी विनय है
दया है दाक्षिण्य का उदय है, अनेकों बानक बना रही है।'[32]

अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध (1865–1947) ने भी खड़ी बोली में ही ग़ज़लें प्रस्तुत की हैं। उन्होंने उर्दू की बहरों का प्रयोग किया है। 'हरिऔध' की ग़ज़लों में सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है। व्यंग्य भी उनकी ग़ज़लों में पाया जाता है। यथा–

'हम रहे चाहते पटाना भी
पेट तुझसे नहीं पटी मेरी'[33]

लाला भगवान दीन ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू छन्दों के प्रयोग पर विशेष बल दिया है। 'नदी में दीन' उनका ग़ज़ल संग्रह है। उनकी ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'तुमने पैरों में लगाई मेंहदी,
मेरी आंखों में समाई मेहंदी।
है हरी ऊपर मगर अंतस है लाल,
है ये जादू की जगाई मेंहदी।'[34]

मैथिली शरण गुप्त की 'भारत–भारती' में भी ग़ज़ल मिलती है जिसमें उन्होंने राष्ट्रवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। उनकी ग़ज़ल का एक शेर प्रस्तुत है जिसमें उन्होंने भारतवर्ष को पुण्य भूमि बनाने की बात की है–

'इस देश को हे दीनबन्धो। आप फिर अपनाइये
भगवान भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइये।'[35]

द्विवेदी युग के एक और प्रमुख राष्ट्रवादी कवि 'जगदम्बा प्रसाद मिश्र हितैषी' ने भी अपनी रचनाओं में ग़ज़ल विधा को अपनाया है। उनकी ग़ज़लों में उर्दू का प्रभाव झलकता है। राष्ट्रीयता की भावना से भरी हुई उनकी एक प्रसिद्ध ग़ज़ल है–

'वतन की आबरु का पास देखें कौन करता है,
सुना है आज मकतबे में हमारा इंतिहा होगा।
इलाही वह भी दिन होगा, जब अपना राज देखेंगे,
जब अपनी ही जमीं होगी, जब अपना आसमां होगा।
शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मरने वालों का यही बाकी निशां होगा।'[36]

इस युग में ग़ज़ल रचना की ओर उन्मुख अन्य कवियों में नाथूराम शर्मा शंकर, देवी प्रसाद पूर्ण, रामनरेश त्रिपाठी, केशव प्रसाद मिश्र, गया प्रसाद शुकल 'सनेही' आदि प्रमुख हैं। द्विवेदी युग के कवियों में ग़ज़ल रचना को लेकर कोई गंभीर प्रयास नहीं दिखता। डा. हरदयाल का मत है कि "यों तो 'भारत भारती' में मैथिली शरण गुप्त ने अंतिम कविता को ग़ज़ल बनाने की कोशिश की। इसकी पहली दो पंक्तियों का अन्त्यानुप्रास मतला के अनुकूल और बाद की पंक्तियों में दूसरी पंक्ति का अन्त्यानुप्रास मतला के अन्त्यानुप्रास से मिलता है लेकिन इसके अतिरिक्त गुप्त जी की यह रचना ग़ज़ल की अन्य शर्तों को पूरा नहीं करती। इस युग में जिन लोगों ने – श्रीधर पाठक, गोपाल शरण नेपाली, लाला भगवान दीन, मन्नत द्विवेदी, माधव शुक्ल, सत्यनारायण कविरत्न आदि ने ग़ज़लें लिखी उन्होंने भी अन्त्यानुप्रास के अतिरिक्त अन्य शर्तों का निर्वाह नहीं किया।"[37]

द्विवेदी युग के कवि भले ही ग़ज़ल रचना की शर्तों को पूरा न कर पाये हों पर उनकी रचनाओं से हिंदी में भी ग़ज़ल का माहौल बनने लगा था। छायावाद युग के कवि प्रसाद और निराला भी ग़ज़ल की ओर उन्मुख हुए।

"छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद ग़ज़ल शैली की रचनाएं (यथा भूल शीर्षक कविता) तथा काफी हद तक उर्दू बहरों का सफल निर्वाह करके ग़ज़ल के मैदान में उतरते हैं। उनकी एक ग़ज़ल 1913 में 'बूंद' में प्रकाशित हुई। 'कानन कुसुम' में 'सरोज' शीर्षक कविता में उन्होंने मतले मकते समेत ग़ज़ल प्रस्तुत की।"[38] प्रसाद ने अपने नाटकों में भी ग़ज़ल का प्रयोग किया है। उनके ग़ज़लों का प्रधान विषय प्रेम है। भाषा संस्कृतनिष्ठ है। एक ग़ज़ल प्रस्तुत है जिसे उन्होंने उर्दू

बहर में लिखा है। इसमें क़ाफिया, रदीफ़ के अतिरिक्त मतला और मक्ते का भी पूरी तरह से निर्वाह किया गया है–

'सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं,
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं।

उन्हें अवकाश ही रहता कहां है मुझसे मिलने का,
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं।

जो ऊंचे चढ़के चलते हैं वो नीचे देखते, पर हम,
प्रफुल्लित वृक्ष की यह भूमि कुसुमागार करते हैं।

न इतना फूलिए तरुवर, सुफल कोरी कली लेकर,
बिना मकरंद के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं।

'प्रसाद' उनको न भूलो तुम तुम्हारा जो प्रेमी है,
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं।'[39]

छायावादी ग़ज़लकारों में अगला नाम निराला जी का लिया जाता है। विद्रोह और विविधता के कवि निराला ने अपनी ग़ज़लों में व्यंग्य का सशक्त प्रयोग किया है। निराला के हाथों में पड़कर हिंदी ग़ज़ल यथार्थ की ओर उन्मुख होती है। उन्होंने प्रेम और वेदना को आधार बनाकर भी ग़ज़लें कही हैं। उनके 'बेला' काव्य–संग्रह में करीब सोलह ग़ज़लें हैं। इन ग़ज़लों की भाषा एक ओर जहां संस्कृतनिष्ठ है वहीं उसमें उर्दू का बोलचाल वाला लहजा भी मिलता है। निराला ग़ज़ल के फारसी छंदों से भली भांति परिचित हैं। इसके साथ ही उन्होंने अपने संगीत ज्ञान का भी शेर रचने में प्रयोग किया है जिसमें उन्होंने पर्याप्त सफलता मिली है। निराला 'बेला' की भूमिका में लिखते हैं– "नयी बात यह है कि अलग–अलग बहरों की ग़ज़लें भी हैं जिनमें फ़ारसी के छन्द शास्त्र का निर्वाह किया गया है।"[40]

निराला की ग़ज़ल का एक शेर प्रस्तुत है जिस पर उर्दू का खूब प्रभाव है और जिसमें लय भी है–

'निगह तुम्हारी थी दिल जिससे बेकरार हुआ
मगर मैं गैर से मिलकर निगह के पार हुआ।'[41]

निराला की ग़ज़लें सामाजिक जीवन के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। सामाजिक विषमता, अन्याय और शोषण के विरुद्ध वह व्यंग्य को धारदार हथियार के रूप मं अपनी ग़ज़लों में उतारते हैं। उनकी व्यंग्य प्रधान ग़ज़ल का एक उदाहरण देखिए–

'किनारा वो हमसे किए जा रहे हैं
दिखाने को दर्शन किए जा रहे हैं

जुड़े थे सुहागिन के मोती के दाने
वही सूत तोड़े लिए जा रहे हैं

छिपी चोट की बात पूछी तो बोले
निराशा के डोरे सिए जा रहे हैं

जमाने की रफ्तार में कैसा तूफां
मरे जा रहे हैं, जिए जा रहे हैं।'[42]

ज्ञान प्रकाश विवेक निराला की ग़ज़लों की विविधता पर लिखते हैं– ''गौरतलब है ग़ज़लों के अश्आर में जो विषय परिवर्तन होता रहता है, वह निराला की ग़ज़लों में भी है। विषय न सिर्फ बदलते हैं, नए दृश्य भी उपस्थित करते हैं। उनकी ग़ज़लें हिंदी ग़ज़ल में 'प्रेम के एक सूत्री विषय को तोड़ती, मानवीय पीड़ा और संघर्ष में दाख़िल होती नज़र आती है।''[43]

कुल मिलाकर निराला 'बेला' के जरिए हिंदी ग़ज़ल की नई जमीन तैयार करते हैं और उसे नया आयाम देते हैं।

छायावादोत्तर युग में हिंदी कवियों की ग़ज़ल में अभिरुचि विद्यमान रही। इस युग में रोमानी ग़ज़लों की प्रधानता रही। सरदार मुजावर के मत में ''प्रस्तुत युग को हम हिंदी की रोमानी ग़ज़ल का युग कह सते हैं।''[44] इस युग के प्रमुख ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में रोमान को प्रमुखता दी है।

हरिकृष्ण प्रेमी के दोनों ग़ज़ल संग्रह 'रूपदर्शन' और 'रूपरेखा' की ग़ज़लें ज्यादातर प्रेम की अनुभूतियों को प्रस्तुत करती है। उनमें विरह और प्रणय के दृश्य सजीव रूप में देखने को मिलते हैं।

'युगों की जिंदगी लेकर न जीवन भार ढोता हूं
शमां से मिल गये क्षण में निछावर प्राण देता हूं।'[45]

जानकी बल्लभ शास्त्री मूलतः गीतकार थे। उन्होंने गजलें भी लिखी। 'सुने कौन नग्मा' काव्य संग्रह में उनकी ग़ज़लें भी शामिल हैं। उनकी कुछ ग़ज़लें ठेठ उर्दू लहजे में हैं तो कुछ हिंदी मिज़ाज की। ग़ज़लों का विषय प्रणय प्रधान है। कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'तुम न हो पास इसी से उदास मेरा मन
सांस चलती है, चिंहुक चेतता नहीं है तन

नींद ऐसी न किसी और को आई होगी
जागकर ढूंढती धरती कहां है मेरा गगन।'[46]

हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को आगे बढ़ाने वाले कवियों में रामेश्वर शुक्ल अंचल भी प्रमुख हैं। इनका एक गजल संग्रह है 'इन आवाजों को ठहरा लो'। अंचल की ग़ज़लों में मिलने की प्यास और बिछुड़ने का दर्द देखा जा सकता है–

'किसकी जुल्फों में ढली जाती है मेरी दुख की रात।
दर्पणी छांहों में किसी डूब जाती मेरी प्यास।'[47]

बलबीर सिंह रंग की ग़ज़लों में उर्दू मिजाज और रुमान की झलक है। हिंदी के सुपरिचित गीतकार नरेन्द्र शर्मा ने भी रुमानी ग़ज़लें लिखी हैं।

हिंदी ग़ज़ल को प्रतिष्ठित करने और उसे पहचान दिलाने वाले कवियों में एक महत्वपूर्ण नाम है प्रगतिशील कवि त्रिलोचन शास्त्री क़ा। उन्होंने ग़ज़ल के कथ्य को आम आदमी की जिंदगी से जोड़ा। उनकी भाषा भी बोलचाल की शब्दावली लिए हुए है। 1956 में 'गुलाब और बुलबुल' नाम से उनकी ग़ज़लों और रुबाइयों का संग्रह प्रकाशित हुआ। संग्रह की ग़ज़लों की विषय वस्तु जीवन और

प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को उभारती है। एक और उसमें आत्मपरकता और वेदना के स्वर है तो दूसरी ओर राजनीतिक, सामाजिक रूढ़ियों के प्रति व्यंग्य का भी स्वर है। चन्द्रबली सिंह के अनुसार 'ग़ज़लों की परम्परा के अनुसार 'गुलाब और बुलबुल' की कविताएं आत्म व्यंजक हैं। लेकिन उनके बीच झांकता हुआ व्यक्ति दर्द का ही नहीं स्वाभिमान और अल्हड़ मस्ती का भी–

"बिस्तरा है न चारपाई है।
ज़िंदगी हमने खूब पाई है।"[48]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में दर्द और वेदना का स्वर सामाजिक संदर्भों से जुड़कर मुखरित होता है। उसमें निराशा की भावना नहीं है। वह मानव जीवन के प्रति आस्था और विश्वास जगाती है। वह कर्म की प्रेरणा भी देती है। उनके शेरों में संघर्ष और कर्म का सौंदर्य चित्रित हुआ है। उनकी ग़ज़लों में प्रकृति की भी विविध छवियां हैं जो उनके ग़ज़ल संग्रह को परम्परागत ग़ज़लों से अलग करती है।

भाषा के स्तर पर शेरों में खरापन और सादगी मिलेगी। त्रिलोचन ग़ज़ल में सरल और बोलचा़ल के शब्दों के प्रयोग पर जोर देते हैं। उनकी ग़ज़लों में यह सरलता देखी जा सकती है–

'भटकता हूं दर–दर कहां अपना घर है
इधर भी सुना है कि उनकी नज़र है।' (गुलाब और बुलबुल पृ. 64)

संक्षेप में त्रिलोचन की ग़ज़लें अपने प्रवाह, अपनी सरल भाषा, अपने सादे अंदाज, यथार्थवादी जीवन दर्शन एवं कथ्य की विभिन्नता के कारण हिंदी गजल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

छायावादोत्तर काल में शमशेर के आगमन से हिंदी ग़ज़लों का एक नया दौर शुरू होता है। हिंदी ग़ज़ल के विकास क्रम में शमशेर बहादुर सिंह का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान रहा है। नरेन्द्र वशिष्ठ के शब्दों में – "शमशेर पहले कवि हैं जिन्होंने हिंदी पाठकों को ग़ज़ल के सही रूप से परिचित कराया। उनकी अधिकतर ग़ज़लों में नाजुक खयाली, मर्म को छूने की क्षमता, भाषा की लोच और बहरों का

निर्वाह दृष्टिगत होता है। ग़ज़ल में खसूसियात लाने के लिए वह ग़ज़ल की परम्परा पर निर्भर करते हैं। उनकी ग़ज़लों पर कई शायरों का असर देखा जा सकता है। खास तौर पर मीर, गालिब, इकबाल और फ़ानी। यह असर कई रूपों में कई प्रकार की अनुगूंज में मिलता है।"[49]

शमशेर से पहले हिंदी के बहुत से कवियों ने ग़ज़लें लिखीं, पर उनकी ग़ज़लों में ग़ज़लियत नहीं आ पाई जो शमशेर की ग़ज़लों में पाई जाती है। डा. रेवती रमण के अनुसार "कवि शमशेर की शमशेरियत का एक अच्छा नमूना उनकी ग़ज़लें हैं जिनमें भाषा की सफाई और भावों की कोमलता असाधारण है।"[50] उनकी ग़ज़लों पर उर्दू शब्दावली का प्रभाव है लेकिन उसमें हिंदी मुहावरों का प्रयोग उसे स्वतंत्र पहचान देती है। यथा–

'ये सांस में जो उसी नाम की अटक सही है
वो ज़िदगी से फ़रामोश हो तो क्योंकर हो
जहां में अब तो जितने रोज अपना जीना होना है
तुम्हारी चोटें होनी हैं हमारा सीना होना है।'[51]

"पहले शेर में 'अटक–सी' और दूसरे में 'होना है' उर्दू का मुहावरा नहीं है, हिंदी का मुहावरा है लेकिन इन दोनों शेरों में यह भाषा की सहजता में खप गया है।"[52]

उनके शेरों में रवानी और लयात्मकता झलकती है। ग़ज़ल की मूल आत्मा ग़ज़लियत उसमें देखी जा सकती है। "ग़ज़लों में जो रुमानियत है, प्रेम के अवसर हैं, उसमें इंटेसिटी है। घनत्व है। ग़ज़लों में प्रेम का प्रत्येक भाव सघन होकर उभरता है। कुछ इस तरह कि उसमें जीवन का संगीत ध्वनित सा प्रतीत होता है।'[53]

'फिर निगाहों ने तेरी दिल में कही चुटकी ली
फिर मेरे दर्द ने पैमान वफ़ा का बांधा।

और तो कुछ न किया इश्क में पड़कर दिल ने,
एक इंसान से इंसान वफ़ा का बांधा।'[54]

उनकी बहुत सारी ग़ज़लों का विषय इश्क है, लेकिन यह केवल व्यक्तिगत संबंधों तक सीमित नहीं इसमें मानवीय करुणा का भी स्पर्श है। ग़ज़लों में आत्मपरकता भी दिखती है लेकिन वह वैश्विक संदर्भ में रुपायित है। लोकगीत की शैली में लिखी हुई शमशेर की एक ग़ज़ल उनके सही मिजाज का पता देती है—

'मैं तो न जानू उर्दू कि हिंदी
प्रेम की बनी सांची से सांची।'[55]

इस तरह शमशेर ने हिंदी ग़ज़ल की जमीन को पुख्ता करने का काम किया। परवर्ती कई कवियों ने शमशेर से प्रभाव ग्रहण किया है। डा० नरेश के मत में ''हिंदी ग़ज़ल के बहुचर्चित हस्ताक्षर दुष्यन्त सहित अनेक कवियों को शमशेर की ग़ज़लों ने ग़ज़ल की ओर आकृष्ट करने में सार्थक भूमिका निभाई है।''[56]

शमशेर के बाद हिंदी की ग़ज़लों में एक नये युग की शुरूआत होती है जिसे हम सामाजिक यथार्थ का युग कह सकते हैं हिंदी के ग़ज़लकारों ने बदलते हुए परिवेश को अपनी ग़ज़लों के माध्यम से व्यक्त किया है। हिंदी की ये ग़ज़लें आम आदमी की समस्याओं से जुड़ गयी हैं। ये ग़ज़लें समयगत सच्चाइयों का एक अनूठा दस्तावेज बनकर सामने आती हैं इस दौर के प्रतिनिधि ग़ज़लकार है दुष्यंत कुमार। हिंदी ग़ज़ल को प्रतिष्ठा दिलाने वाले एक महान ग़ज़लकार साबित होते हैं दुष्यंत कुमार। उनका ग़ज़ल संग्रह 'साए में धूप' समयगत सच्चाईयों का अनूठा दस्तावेज बन गया है। इस संग्रह के माध्यम से वह अपनी और आम आदमी की पीड़ा को ग़ज़ल के शेरों में मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त करते हैं। दुष्यंत की ग़ज़लों की जमीन बहुत व्यापक है। वह राजनीति, गरीबी, सांप्रदायिक तनाव, भूख, प्रेम आदि विविध विषयों पर ग़ज़ल लिखते हैं। उन्होंने व्यंग्य का सफल प्रयोग किया है। 'दुष्यंत ने समाजी और सियासी विद्रूप और विडंबनाओं को ग़ज़लों में सलीके से प्रस्तुत किया है।' उनमें राजनीतिक चेतना है, लेकिन ये ग़ज़लें नारों में नहीं बदली। उसमें तीखी बेधकता है। यथा—

'दुख को बहुत सहेज के रखना पड़ा हमें
सुख तो किसी कपूर की टिकिया सा उड़ गया।'[57]

दुष्यंत ने अपनी ग़ज़लों में निजी पीड़ा के साथ आम आदमी की पीड़ा को भी शामिल किया है। उसमें आम आदमी की धड़कने सुनी जा सकती हैं। "दुष्यंत की निजता और अपनी पीड़ा अवाम की आंखों में आंखे डालने से साफ नजर आती हैं।"[58] यथा–

'मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।'[59]

दुष्यंत ने न केवल ग़ज़लकारों की एक नई पीढ़ी तैयार की बल्कि पाठकों और श्रोताओं के एक बड़े वर्ग को हिंदी गजल की ओर आकृष्ट किया। उनके अवदान पर सरजू प्रसाद मिश्र की टिप्पणी है– "दुष्यंत कुमार ने उर्दू मुहावरे के बहुत नज़दीक जाकर अपनी ग़ज़लों में वह विषयवस्तु भरी जो आज की कविता के लिए अनिवार्य थी। ... दुष्यंत की इस अभूतपूर्व सफलता ने ग़ज़ल लेखन को प्रेरित किया और धीरे–धीरे हिंदी कविता ग़ज़लों से भर उठीं।"[60]

दुष्यंत कुमार के समकालीन ग़ज़लकारों मे गोपालदास नीरज का नाम प्रमुख है। नीरज बुनियादी तौर पर हिंदी के गीतकार हैं। पर उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए ग़ज़ल शैली को भी अपनाया है। उनकी ग़ज़लों में रुमान के साथ सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और आम आदमी के भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। व्यंग्य का भी प्रयोग करते हैं कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'बुझ जाए सरे शाम ही जैसे कोई चिराग,
कुछ यूं है शुरूआत मेरी दास्तान की।

ज्यों लूट ले कहार ही दुलहिन की पालकी,
हालत यही है आजकल हिन्दोस्तान की।'[61]

सन् 70 के बाद सामाजिक यथार्थ की हिंदी ग़ज़लों का एक नया दौर शुरू होता है। इस दौर के तमाम ग़ज़लकारों ने आधुनिक जीवन की विसंगतियों, महानगरीय जीवन की संत्रास, कुण्ठा, मंहगाई, भ्रष्टाचार आदि का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत किया है। इस दौर के प्रमुख ग़ज़लकारों में चन्द्रसेन विराट, जहीर कुरैशी,

डा0 कुंअर बेचैन, पुरुषोत्तम प्रतीक, भवानी शंकर, रामकुमार कृषक, ज्ञान प्रकाश विवेक, आदि के नाम शामिल हैं।

'चन्द्रसेन विराट' की ग़ज़लें इंसान और समाज की हकीकत को प्रस्तुत करती हैं। उन्होंने सामाजिक एवं वेदनापूर्ण ग़ज़लें पेश की हैं। उनके प्रमुख ग़ज़ल संग्रह हैं– निर्वसना चांदनी (1970) आस्था के अमलतास (1980) कचनार की टहनी, धार के विपरीत (1986)। उनका एक शेर है–

'जिस तरह से गांव क़स्बों पर शहर हावी हुआ
आदमी पर आदमी का जानवर हावी हुआ।'[62]

विराट के समकालीन ग़ज़लकार हैं जहीर कुरैशी। इन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक एवं राजनीतिक विद्रूपताओं का पर्दाफ़ाश किया है।

हिंदी ग़ज़ल के एक अन्य प्रमुख हस्ताक्षर है डा. कुंअर बेचैन। उनकी ग़ज़लों ने काफी लोकप्रियता हासिल की। प्रमुख ग़ज़ल संग्रह है– 'शामियाने कांच के' (1983), 'महावर इंतज़ारो का' (1983), 'रस्सियां पानी की' (1987)। इन्होंने अपनी ग़ज़लों के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को वाणी दी है। सामाजिक पतन की ओर संकेत करते हुए एक शेर में कहते हैं–

'हर एक सड़क पै हो रही इंसानियत कत्ल
पूरे शहर में फिर भी कोई सनसनी नहीं है।'[63]

कुंअर बेचेन की ग़ज़लों में व्यंग्य और यथार्थ के साथ प्रेम एवं वेदना की भावनाएं भी अभिव्यक्त हुई हैं।

पुरुषोत्तम प्रतीक अपने ग़ज़ल संग्रहों –'घर तलाशकर', 'पेड़ नहीं तो साया होता' के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल के क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज कराते हैं। उनकी ग़ज़लों का विषय भी सामाजिक यथार्थ और व्यंग्य है।

वर्तमान ग़ज़ल

इस बीच हिंदी ग़ज़ल में कई नए नाम जुड़ते चले जाते हैं जो आधुनिक परिवेश और अपने यथार्थ को प्रमुखता से ग़ज़लों में प्रस्तुत करते हैं। समकालीन

हिंदी ग़ज़ल अब एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी है। डा. नरेश के अनुसार "इसमें संदेह नहीं कि आठवें दशक की कविता में ग़ज़ल ने अपने अस्तित्व का लोहा मनवाने का जो प्रयास गंभीरतापूर्वक आरम्भ किया है, वह अभी तक जारी है और अब ग़ज़लकारों की एक ऐसी खेप हमारे सामने है, जो धड़ाधड़ ग़ज़लें लिख रही है।"[64] हिंदी के वर्तमान ग़ज़लकारों में डा. रोहिताश्व अस्थाना, दिनेश शुक्ल, डा. रमासिंह, महेश अनघ, नरेन्द्र वशिष्ठ, बी. के. जौहरी, उद्भ्रांत, मनोज तोमर, अशोक अंजुम, रामनारायण स्वामी, अदम गोंडवी आदि के नाम प्रमुख हैं।

हिंदी ग़ज़ल के वर्तमान परिदृश्य पर कमलेश भट्ट 'कमल' की एक महत्वपूर्ण टिप्पणी है– "हिंदी में ग़ज़ल को दुष्यंत कुमार के रूप में जो नेतृत्व प्राप्त हुआ, उसने न केवल ग़ज़ल को उर्दू–फारसी की काव्य विधा होने से बाहर निकाला वरन् उसके माध्यम से ही हिंदी में ग़ज़ल ने अपनी अद्भुत सम्प्रेषित शक्ति और प्रभावोत्पादकता का भी भरपूर अहसास कराया। ... हिंदी ग़ज़ल के चर्चा में आने के पीछे छंद मुक्त नयी कविता की बौद्धिक शुष्कता और वायवीयता से पाठकों को मोहभंग होना रहा है।"[65] दुष्यंत और उनके बाद ग़ज़लकारों की पूरी की पूरी पीढ़ी ने कुंठा, अभाव, संत्रास और संघर्ष के बीच यांत्रिक जिंदगी जी रहे आम आदमी की पीड़ा को अपने ग़ज़लों में स्वर दिया। इन्होंने ग़ज़ल को व्यापक जीवन संदर्भों के साथ जोड़ा। हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को आगे बढ़ाने में धर्मयुग, सारिका, साप्ताहिक हिंदुस्तान, सापेक्ष (ग़ज़ल विशेषांक), आजकल (ग़ज़ल विशेषांक) आदि पत्रिकाओं का भी विशेष योगदान रहा है।

वर्तमान समय में हिंदी ग़ज़लकार परी शिद्दत के साथ हिंदी ग़ज़ल की समृद्धि और विकास में लगे हैं। बदलते समय की धड़कनों को उनकी ग़ज़लों में सुना जा सकता है– डा. चन्द्र त्रिखा का एक प्रयोगधर्मी शेर–

'सूरज की बेबसाइट में भी सपने हैं
अब तक नाहक नींद गंवाई जाने दे।'[66]

नए उपमाओं का प्रयोग विनय सरगम के शेर से–

'रिश्तेदारी है टेलीफोन मशीन
सिक्का डालो तो बात होती है।'[67]

हिंदी ग़ज़ल का स्वरूप

ग़ज़ल हिंदी की अपनी चीज नहीं हैं वह फारसी उर्दू की जरिए हिंदी में आई है। ग़ज़ल अपने परम्परागत अर्थों में प्रेम, श्रृंगार और विरह के भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है। ग़ज़ल के उद्भव से ही रोमानीपन उसकी विशेषता रही है। ग़ज़ल का अर्थ ही लिया गया है प्रेमिका से मोहब्बत भरी गुफ्तगू। इतना ही नहीं उसके रचना विधान में भी कोमलकांत पदावली, अर्थ–सघनता, सरस भावव्यंजना, ध्वन्यात्मकता और लयात्मकता के दर्शन होते हैं। हिंदी के कवियों ने जब फारसी–उर्दू से ग़ज़ल को ग्रहण किया तो उसके स्वरूप को भी बदला। हिंदी के पहले ग़ज़लकार अमीर खुसरो से लेकर भारतेन्तुद युग तक के ग़ज़लकारों का मुख्य विषय तो प्रणय ही रहा। फिर धीरे–धीरे उसमें व्यापक जीवन संदर्भों का समावेश हुआ और हिंदी ग़ज़ल एक स्वतंत्र काव्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। आज की हिंदी ग़ज़ल न केवल अपार लोकप्रियता हासिल कर रही है अपितु वह आम आदमी की भावनाओं के अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम भी बनी है। यही कारण है कि आज हिंदी में नये–नये ग़ज़लकार सामने आ रहे हैं जो हिंदी ग़ज़ल की परम्परा को बढ़ाने में अपना योगदान दे रहे हैं।

"हिंदी ग़ज़ल की सरलतम व्याख्या यूं हो सकती है कि देवनागरी लिपि में लिखी जा रही ग़ज़ल को हिंदी ग़ज़ल कहेंगे।"[68] इसके साथ ही विषय की दृष्टि से भी हिंदी ग़ज़ल फारसी–उर्दू की ग़ज़लों से अलग ढंग की है। फारसी–उर्दू की ग़ज़लों में इश्क–मुहब्बत, मिलन–जुदाई, साकी–पैमाना, गुलो–बुलबुल आदि विषयों का ही जिक्र मिलता है जबकि हिंदी ग़ज़लों का कथ्य ऐसे विषयों से एक हद तक दूरी बनाकर चलता है। हिंदी ग़ज़ल किसी महबूबा से बातचीत करती हुई नहीं दिखाई देती बल्कि आम आदमी की जिंदगी से वह बातचीत करती हुई दिखाई देती है। आम आदमी की जिंदगी ही हिंदी ग़ज़ल की बुनियाद रही है। "हिंदी ग़ज़ल में प्रेम एवं वासना जैसे परंपरागत ग़ज़ल के तत्वों को नकारते हुए समाज, राजनीति, धर्म, शासन एवं सर्वहारा वर्ग की समस्याओं, विसंगतियों तथा विद्रूपताओं का यथार्थ स्वरूप प्रतीकों एवं बिंबों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता हैं।"[69]

गोपाल दास नीरज लिखते हैं– "हिंदी ग़ज़ल में उर्दू ग़ज़ल जैसी रूमानियत नहीं है। इसके विपरीत हिंदी ग़ज़ल में आज के राजनीतिक, सामाजिक, तथा सांस्कृतिक परिवेश का भरपूर चित्रण है।"[70] ऐसा नहीं है कि उर्दू ग़ज़लों में सामाजिक, राजनीतिक अथवा दुखदर्दों की बातें नहीं होती हैं। पर उसका रुझान रुमानियत की तरफ ज्यादा है। लेकिन हिंदी ग़ज़लकारों ने समकालीन सच्चाईयों को बड़ी बेबाकी के साथ लोगों के सामने प्रस्तुत किया है।

शिवकुमार मिश्र के शब्दों में– "हिंदी में ग़ज़ल अब अपना स्थान बना चुकी है। ... अब वह किसी एक भाव भूमि या विषय क्षेत्र की चीज न रहकर आदमी की जिंदगी की मुकम्मल तस्वीर बन चुकी है। व्यक्ति से समाज और समाज से आगे पूरी दुनिया जहान के स्पंदन अब उसमें सुने जा सकते हैं। उसमें व्यक्तिमन के हर्ष–अवसाद के साथ पूरे समाज का यथार्थ अपनी पूरी भयावहता में विद्यमान है। प्रेमी मन की तरंगे कम आम आदमी की व्यथा और उसके दुख दाह अब उसमें अधिक विशद बनकर आ रहे हैं। देश–दशा का क्रूर साक्षात्कार भी अब वह कर रही है और आम आदमी के हक में आवाज की पूरी बुलंदियों से गहारती हुई सत्तासीनों को ललकार रही है।"[71]

इस तरह हिंदी ग़ज़ल का मूल स्वर राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों का प्रतिरोध और आम आदमी की व्यथा की अभिव्यक्ति रहा है। जिसे दुष्यंत कुमार के एक शेर के माध्यम से यूं कहा जा सकता है–

'मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूं
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।'[72]

रचना विधान

हिंदी ग़ज़ल शिल्प की दृष्टि से भी उर्दू ग़ज़लों से कुछ अलग हटकर है। कथ्य की दृष्टि से हिंदी ग़ज़ल तो उर्दू ग़ज़लों से आगे निकल गई पर शिल्प में वह उसकी बराबरी नहीं कर पायी। उसके वह लोच और लय नहीं आ पाया जो उर्दू ग़ज़लों का प्राण है। इस विषय में महेश अनघ का कहना है– "हिंदी शब्द, संयुक्ताक्षर एवं संधिहीन स्वतंत्र शब्द अधिक होते हैं जिनकी वजह से गायन दूर सामान्य तरन्नुम

भी मुश्किल हो जाता है।"[73] इसके समाधान के लिए वह हिंदी में सामान्य बोलचाल के शब्दों के प्रयोग पर जोर देते हैं। वह कहते हैं– "और जब इन क्लिष्ट शब्दों के स्थान पर हम सामान्य प्रचलित उर्दू के शब्द रख देते हैं, तो सहज रूप से ही उसकी लय आसान हो जाती है।"[74] त्रिलोचन शास्त्री का भी यही कहना है– "उर्दू ग़ज़लों में जो भाषा आती है वह बोलचाल का वह लहजा पकड़ती है जिसमें कविता मे जीवन तत्व आता है। हिंदी में लिखने वाले बोलचाल का सौदर्य देख ही नहीं पाते। हिंदी का वातावरण अलग है। उसको रूपायित करने के लिए वाक्यों में लोच की जरूरत है और इस लोच को लाने में बड़ी मशक्त है।"[75]

इसके अतिरिक्त उर्दू की ग़ज़लें कुछ खास बहरों में लिखी जाती है जो उसे लय से भर देती हैं हिंदी ग़ज़लों में छंद विधान कई तरह का है। उर्दू ग़ज़लों में केवल बहरें ही चलती हैं, जबकि हिंदी ग़ज़लों में बहरों के अलावा छंद स्तर पर मात्रिक एवं वार्णिक वृत्तों का भी प्रयोग हो रहा है। महेश अनघ के अनुसार– "ग़ज़ल में बहर का कसाव न तो मात्रिक है और न वर्णिक है। उसमें अरकान के माध्यम से शब्द समूह संगठित किये जाते हैं। इन अरकान में बेहद लचीलापन है, कभी ये फैल जाते हैं और कभी सिकुड़ जाते हैं अर्थात इनका उच्चारण गायन की सुविधा पर निर्भर है क्योंकि इनमें जो मात्राएं निहित हैं वे छंदशास्त्र की नहीं, बल्कि तबले की मात्राएं हैं।"[76]

हिंदी और उर्दू ग़ज़ल के शिल्प में एक और फर्क उनके अपने मुहावरों का है। "उर्दू ग़ज़ल मुहावरे का मुख्य आधार लिये होती है, हिंदी ग़ज़ल बिंब, प्रतीक का, वह हिंदी कविता की आलंकारिकता का भी बड़ी हद तक निर्वाह कर रही है।"[77] हिंदी ग़ज़ल अधिकांशतः शुद्ध हिंदी में ही लिखी गई। इसमें हिंदी की व्याकरण का ही प्रयोग हुआ है, इस भाषा के अपने समास, वचन, लिंग हैं, जिनका स्वरूप हिंदी गलत में देखा जा सकता है। इसके अलावा दोनों की उच्चारण पद्धति में भी फर्क है। डा0 नरेश के अनुसार "शेर का वज़न शब्द की अक्षर मात्राओं के आधार पर नहीं अपितु उसके उच्चारण के आधार पर कायम है। शब्द के उच्चारण का सही ज्ञान नहीं होगा तो लयभंग होने का खतरा बराबर बना रहेगा।"[78] हिंदी

ग़ज़लों में 'व' के उच्चारण आदि में, दो शब्दों की संधि बनाने में उर्दू–फारसी के नियमों को लेकर अशुद्धियाँ भी होती हैं। यदि हिन्दी के ग़ज़लकार उर्दू–फारसी के शिल्पगत बारीकियों को ध्यान में रखें तो वह रूप के आधार पर भी हिंदी ग़ज़ल को बेहतर बना सकते हैं। हिंदी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़लों के शिल्प के समकक्ष लाने के लिए त्रिलोचन जी का सुझाव महत्वपूर्ण है– "हिंदी में लिखने वाले, बोलचाल का सौदर्य नहीं देख पाते। हिंदी का वातावरण अलग है। उसको रूपायित करने के लिए, वाक्यों में लोच की ज़रूरत है और इस लोच को लाने में बड़ी मशक्कत है।"[79]

संक्षेप में कह सकते हैं कि अगर हिंदी ग़ज़लों में आम बोलचाल के शब्दों, लोच और लयात्मकता पर ध्यान दिया जाए तो वह कथ्य के साथ शिल्प की दृष्टि से भी बेहतर बन सकती है। वर्तमान में हिंदी ग़ज़कारों ने इस ओर ध्यान दिया है और वे अपनी कमियों को सुधारते हुए हिंदी ग़ज़ल की परंपरा को विकसित करने में अपना योगदान दे रहे हैं।

संदर्भ

1. 'गुलाब और बुलबुल'– त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1956 के फ्लैप से उद्‌धृत।
2. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 10।
3. वही, पृ. 15।
4. वही, पृ. 14।
5. मजहर इमाम, पत्रिका सापेक्ष, अंक 38, जुलाई–सितम्बर दुर्ग, (म.प्र.) पृ. 506।
6. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 2001, पृ. 67।
7. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 10।
8. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 12।
9. हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, की भूमिका से उद्‌धृत।
10. वही, पृ. 12–13।
11. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 10 से उद्‌धृत।
12. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 83।
13. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 23।
14. वही पृ. 23।
15. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 35।
16. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 28।
17. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 43–44।
18. वही, पृ. 44।

19. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 44।
20. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 85।
21. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 44–45।
22. वही, पृ. 46।
23. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 26।
24. वही, पृ. 41।
25. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 43 से उद्धृत।
26. वही पृ. 45 से उद्धृत।
27. वही, पृ. 46।
28. वही, पृ. 47।
29. वही पृ. 47।
30. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 59 से उद्धृत।
31. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 44।
32. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 62 से उद्धृत।
33. वही पृ. 62 से।
34. वही पृ. 63 से।
35. वही पृ. 63 से।
36. वही पृ. 65 से।
37. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 45।

38. वही, पृ. 46।

39. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 49 से उद्धृत।

40. वही पृ. 50 से उद्धृत।

41. हिंदी छायावादी ग़ज़ल, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2007, पृ. 69 से उद्धृत।,

42. वही पृ. 92 से उद्धृत।

43. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 52 से उद्धृत।

44. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 71 से उद्धृत।

45. वही पृ. 72 से।

46. वही पृ. 71 से।

47. वही पृ. 72 से।

48. त्रिलोचन के बारे में, गोबिन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं–

49. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 73 से उद्धृत।

50. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 69 से उद्धृत।

51. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 48 से उद्धृत।

52. वही पृ. 48।

53. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 67 से उद्धृत।

54. वही पृ. 67।

55. वही पृ. 69।

56. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 51 से उद्धृत।

57. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 76 से उद्धृत।

58. वही पृ. 76।

59. वही पृ. 76।

60. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 53 से उद्धृत।

61. हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001, पृ. 61 से उद्धृत।

62. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 80 से उद्धृत।

63. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 21 से उद्धृत।

64. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 62 से उद्धृत।

65. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006, पृ. 94–95 से उद्धृत।

66. वही, पृ. 132 से उद्धृत।

67. वही, पृ. 133 से उद्धृत।

68. वही, पृ. 94 से उद्धृत।

69. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, 1993, पृ. 401 से उद्धृत।

70. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 26 से उद्धृत।

71. हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001 की भूमिका से।

72. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 20 से उद्‌धृत।

73. वही, पृ. 119।

74. वही, पृ. 119।

75. वही, पृ. 301।

76. वही, पृ. 118।

77. वही पृ. 77।

78. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डा. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 72 से उद्‌धृत।

79. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ. 30 से उद्‌धृत।

अध्याय : तीन

गुलाब और बुलबुल संवेदना के विभिन्न धरातल

गुलाब और बुलबुल : संवेदना के विभिन्न धरातल

'गुलाब और बुलबुल' संग्रह की ग़ज़लों में जीवन का सौंदर्य अभिव्यक्त हुआ है उसकी समग्रता के साथ। जिसमें धूप भी है, छांव भी, प्रेम भी है, संघर्ष भी। 'गुलाब और बुलबुल' शीर्षक से इसके केवल रुमानी ग़ज़लों का संकलन होने का भ्रम होता है पर वास्तव में यह रुमान से ज्यादा जिंदगी की हकीकत से रूबरू है। जैसा कि जीवन प्रकाश जोशी लिखते हैं– ''मजमून का सारा मसाला जिंदगी का है: उस जिंदगी की जो 'वाकई' से वावस्ता होती है। बेशक, कथ्य–वस्तु के संदर्भ में यह शायरी की प्रथा परंपरा से पृथक हुआ कुछ उल्लेखनीय तो है ही।''[1] जहां परंपरागत शायरी इश्क और हुस्न के वर्णन तक ही खुद को सीमित रखती है वहीं त्रिलोचन के ग़ज़लों का यह संकलन मानवीय जीवन की विभिन्न मनोदशाओं का परिचय कराता है। जीवन के सौदर्य को प्रकृति के सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत कर त्रिलोचन ने ग़ज़ल में एक नई परम्परा की शुरूआत की है। संघर्ष और श्रम के चित्र इसमें नया आयाम जोड़ते हैं। यहां त्रिलोचन के सरोकार गमे जानां से लेकर गमे दौरा तक है। कह सकते हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लें परम्परागत शायरी की इश्क, वेदना और श्रृंगार की एकरसता को तोड़कर जिंदगी की एक मुकम्मल तस्वीर पेश करती है।

जगत–जीवन के प्रेम कवि त्रिलोचन अपनी शायरी में वेदना और निराशा से ज्यादा महत्व आशा और उल्लास को देते हैं। इसीलिए वह प्रकृति और जीवन की ध्वनियों, रूप, रस, गंध को पूरी तन्मयता के साथ 'गुलाब और बुलबुल में अभिव्यंजित करते हैं। इसी प्रसंग में चन्द्रबली सिंह लिखते हैं– ''इस संग्रह में भी 'धरती' (त्रिलोचन का पहला संकलन) की तरह जमीन मानव जीवन के प्रति आस्था और विश्वास की है। ... उसमें त्रिलोचन के दृष्टिकोण की ओर आंशिक संकेत भी हैं। प्रगतिवादी कवियों में सौंदर्यवादी रुझान उनमें सबसे ज्यादा है। त्रिलोचन की कविता जीवन में संघर्ष की प्रेरणा देने से कही ज्यादा हमें जीवन के सौंदर्य का बोध कराती है। यह सौदर्य उनके लिए केवल प्रेम तक सीमित नहीं है बल्कि पूरे अस्तित्व में है।''[2]

इन ग़ज़लों की संवेदना में हिंदी की जातीय परम्परा की अनुगूंजे भी मिलती हैं। यहां तुलसी और निराला की अर्न्तध्वनियां व्याप्त हैं। त्रिलोचन ने किसान जीवन की छवियों, उसके संघर्षों को तो उभारा ही है, नैतिक मूल्यों, श्रम और निष्ठा की बात भी की हैं एक तरह से किसान–जीवन का यथार्थ 'ग़ज़ल' की नाजुकी और रवायत को तोड़कर उसमें खुरदुरापन लाता है। इसीलिए इन ग़ज़लों में सौंदर्य के साथ सादगी भी मिलती है। इनमें एक किस्म का संयम है जो किसान जीवन के अनुभव से उपजा है। संयम और सादगी ने त्रिलोचन की ग़ज़लों को सहजता प्रदान की है। इस बारे में डा0 गोविन्द प्रसाद ने लिखा है– "भावों की सहजता और भाषा की सादगी त्रिलोचन की ग़ज़लों का खास पहलू है। दर–असल कवि त्रिलोचन रागमयी स्थितियों को अपने रचनात्मक संयम से आवेग रहित बनाते हैं। इसीलिए इन ग़ज़लों में भावों की चमत्कारपूर्ण सृष्टि न होकर अनुभव की दीप्ति मिलेगी।"[3]

गुलाब और बुलबुल संकलन की ग़ज़लों की संवेदना का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत विवरण प्रस्तुत है–

जीवन–संवाद और आत्मपरक शेर

त्रिलोचन की शायरी जिंदगी से गुफ्तगू करती है। परंपरागत शायरी महबूब की बातें करती हैं। पर यहां त्रिलोचन ने जिंदगी की बातें कही हैं। वह जिंदगी को संबोधित करते हुए चलते हैं जैसे वह उनके सामने बैठी हो और वे उससे अपने सुख–दुख की बात कर रहे हैं। जिंदगी ही उनकी प्रेमिका है चाहे वह हंसाये या रुलाये। वह उससे भागते नहीं, दुखों से विचलित नहीं होते खुलकर उससे अपनी बात कहते हैं कहीं कोई कुंठा नहीं। वह जीवन में डूबकर जीने में विश्वास करते हैं न कि दामन बचाकर पलायन करने में। "जीवन का प्रेम त्रिलोचन पर नशे की तरह सवार रहा है, जिससे उन्होंने अभाव को अभाव और दुख को दुख नहीं समझा। उन्होंने निरन्तर संघर्ष में ही अपने दिन बिताये हैं और कवि के रूप में लोगों में जीवन के प्रति आस्था जगाते तथा उन्हें उसके सौंदर्य से परिचित कराते रहे हैं।"[4] त्रिलोचन की ममता जीवन से प्यार करने वालों पर बरसती है–

'जीवन पथ पर जिन को देखा
उन सब से मन की ममता है' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 21)

जिस जीवन से त्रिलोचन ने इतना प्यार किया है उसकी राह आसान नहीं रही उनके लिए। दुख, संघर्ष, अपमान, यातना और उपेक्षा उनके साथ बराबर चलते रहे। फिर भी वह हारते नहीं। उनके भीतर का राग जीवन के सफर को आसान बनाता है। वह दुख के क्षणों में भी आशा के गीत गाते हैं। त्रिलोचन एक शेर में कहते हैं–

जिंदगी देख ली, कड़वी है बहुत ही कड़वी
अपने स्वर से जो मधुर कर सको तो कैसा हो (वही, पृ. 90)

त्रिलोचन कहते हैं– क्या हुआ जो मैंने कुछ नही पाया, यही क्या कम है दु:ख के क्षणों में भी मुस्करा रहा हूं–

दुख की लहरों के ऊपर सिर उठा कर मुसकराया
कंज ने कब प्रार्थना की थी मुझे आ कर खिला दो। (वही, पृ. 82)

और– 'हम ने खोया बहुत तो कुछ पाया
राग जीवन के गा गया कोई' (वही, पृ. 70)

'दे नए गीत उठ त्रिलोचन अब,
फिर तेरे द्वार आ गया कोई' (वही, पृ. 70)

त्रिलोचन की ग़ज़लों में आपबीती का भी सिलसिला चलता है। जिसमें उनके जीवन संघर्ष की ध्वनियां व्याप्त हैं। त्रिलोचन को अपने जीवन में अनेक संकटों और अभावों का सामना करना पड़ा जिसका प्रभाव उनकी शायरी पर देखा जा सकता है। लगातार दु:ख सहते हुए उनकी क्या मन:स्थिति हो जाती है उसका अंदाजा इस शेर से लगाया जा सकता है–

'आजकल क्या कुछ इधर मेरे हृदय को हो गया,
चुप ही चुप है, अब उसे रोना है क्या गाना है क्या'

(गुलाब और बुलबुल पृ. 17)

त्रिलोचन को जिंदगी ने जो गम दिए तो दिए, लोग भी उनकी उपेक्षा करते रहे। यह एक बहुत बड़ी सच्चाई है कि त्रिलोचन की रचनाएं बहुत दिनों तक उपेक्षित ही रही। उनकी बातों को खारिज किया जाता रहा। त्रिलोचन की कविता में जो सादगी और सहजता मिलती है उससे आलोचक गण दूर भागते रहे। वह उसके भीतर बह रहे जीवन धारा को नहीं देख पाये। यह अकारण नहीं त्रिलोचन ने 'गुलाब और बुलबुल' संकलन के पहले पेज पर 'गालिब' की यह शायरी कोट की है—

'या रब न वो समझे हैं न समझेंगे मेरी बात
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जुबां और'[5]

त्रिलोचन प्रगतिशील कवि हैं। जन पक्षधर कवि। लेकिन प्रगतिशील कवियों की लिस्ट में उनका कहीं नाम नहीं होता। त्रिलोचन बहुत ही शांत स्वर में सधे हुए ढंग से अपनी पीड़ा इस तरह बयान करते हैं—

'कहते हैं वोह कि त्रिलोचन मुझे पसंद नहीं
आपसी चर्चा में नाम उसको तो लाया न करो। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 18)

जब त्रिलोचन को कोई पसंद नहीं तो फिर महफिल में उनका क्या काम? उपेक्षा का परिणाम यह होता है कि उनसे अब गाया नहीं जाता, दिल उदास हो जाता है वह दुनियादारी से खुद को दूर कर लेते हैं—

बात क्या है जो त्रिलोचन कटा कटा सा है
महफिलों में इधर उसको कहीं पाया न गया' (वही, पृ. 23)

और कुछ दिनों बाद त्रिलोचन का हाल यह हो जाता है—

'इधर सोच क्या है त्रिलोचन के जी में,
शरीर उसका पहले का आधा न देखा' (वही, पृ. 59)

त्रिलोचन की परेशानी यहीं नहीं खत्म होती। मुश्किल तो तब आती है जब वह अपना दुख—दर्द किसी से कह नहीं पाते। दुःख का विज्ञापन करना उन्हें पसंद

नहीं। इसलिए वह चुप रहना ही ठीक समझते हैं। जो हुआ सो हुआ अब किसी को अपना दुखड़ा सुनाने से क्या फायदा–

'चुप क्यों न रहूं हाल सुनाऊं कहां कहां
जा जा के चोट अपनी दिखाऊं कहां कहां

क्या गम जो स्वर उठे तो कहीं जा के रहेंगे
इस दर्द की लहर को छिपाऊं कहां कहां' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 60)

दरअसल "उनमें अपने और दूसरों के दुख की गहरी अनुभूति और फिर उसकी अभिव्यक्ति तो है, पर उसको लेकर कोई शोरगुल नहीं है। दुख को तटस्थ भाव से देखना, केवल देखते रहना यह त्रिलोचन का ढंग है, जो उनकी कविता को रुमानी कवियों की तुलना में ज्यादा बेधक और मारक बनाता है।"[6] दुख के चरम पर पहुंचकर वह खुद से बेपरवाह हो जाते हैं और निसंग भाव से यह कहते हैं–

'भटकता हूं दर दर कहां अपना घर है
इधर भी, सुना है कि उन की नजर है।

उन्होंने मुझे देख के सुख जो पूछा
तो मैंने कहा कौन जाने किधर है।' (वही, पृ. 64)

दुख में एक समय ऐसा भी आता है जब उनके पास कहने सुनने को कुछ नहीं रह जाता है। वह अपनी जिंदगी से कहते हैं–

'हाल पतला है मेरा तुझ से बताऊं तो क्या
दुख पुराना है नई बात सुनाऊ तो क्या' (वही, पृ. 85)

त्रिलोचन ने अपनी जिंदगी दुख के दिन गिनते हुए बिता दिए। यह दिन कैसे रहे होंगे इसका कुछ अंदाजा हम इस शेर से लगा सकते हैं–

दुख हमें कम न हुआ कांटे नित्य पा पा कर
काट दिए दिन अपने जैसे तैसे गा गा कर (वही, पृ. 109)

पस्ती और मुफलिसी के ये चित्र झकझोर कर रख देते हैं। दुःख और यातना का अंतहीन सिलसिला, चारों ओर से मिल रही उपेक्षा, कवितओं को भी

और कवि को भी। इसका परिणाम यह होता हे कि कवि खुद को अकेला पाता है। वह अपना दुख किसी से कहना भी नहीं चाहते उसे भीतर ही भीतर पीते रहते हैं। उनकी शायरी में यह जो दर्द की छाया है सब इसी उपेक्षा का परिणाम है। इसी प्रसंग में डा. गोबिन्द प्रसाद लिखते हैं– "उदासी, अवसाद, अवसन्नता और अकेलापन उनकी कविताओं में इतना है कि बहुधा वे खुद से बात करते नज़र आते हैं। दुःख के अतिरेक में यह स्वाभाविक है।"[7]

हिंदी की जातीय परंपरा का निर्माण जिन कवियों से होता है उन सभी को अपने जीवन में अपार दुखों और कष्टों का सामना करना पड़ा है। तुलसी, निराला से लेकर त्रिलोचन तक और आगे के भी जनवादियों कवियों को हम दुःख से गुजरते हुए देख सकते हैं। इन कवियों का जीवन कैसा रहा होगा यह निराला के चंद शेरों में देखा जा सकता है–

'मुसीबतों में कटे हैं दिन, मुसीबत में कटी रातें
लगी है चांद–सूरज से, निरंतर राहु की घातें'[8]

'जमाने की रफ्तार में कैसा तूफां
मरे जा रहे हैं, जिए जा रहे हैं।'[9]

त्रिलोचन की ग़ज़लों में सिर्फ उनका ही दुःख नहीं प्रकट हुआ है। आम आदमी की जिंदगी भी उसमें ध्वनित हुई है। त्रिलोचन को खुद से ज्यादा जन की परवाह है। इसी जन के लिए वह कहते हैं–

चाहता हूं मैं मनुज के ताप को कुछ हर सकूं
शून्यता उस के हृदय की हो सके तो भर सकूं।

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 124)

'गुलाब और बुलबुल' की ग़ज़लों में त्रिलोचन ने अपने दुख के साथ जनता की पीड़ाओं को भी बयान किया है। वह सिर्फ 'अपनी' में ही खोये नहीं रहते। सामाजिक यथार्थ का उन्हें अहसास है। रामनिहाल गुंजन के अनुसार – "त्रिलोचन की ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल की परंपरा के मुताबिक प्रायः आत्माभिव्यंजनात्मकता अथवा आत्म परकता मिलती है। लेकिन दूसरी ओर उनमें प्रायः सामाजिक यथार्थ

की धरती पर, ताप केताये हुए दिन भी मिल जाते हैं।"[10] ताप के ताये हुए दिनों की कुछ तस्वीरें देखिए–

'जिंदगी कितनों की कटती है आस्मां के तले,
एक छप्पर भी किसी से यहां छाया न गया' (वही, पृ. 22)

'आदमी जी रहा है मरने को
सब के ऊपर यही सचाई है।' (वही, पृ. 29)

दर्द कविता को धार देता है। कहा भी गया है कि 'इल्म से शायरी नहीं आती दर्द को सीने में जगह दे।' त्रिलोचन का स्वानुभूत दर्द जब उनकी कविता में उतरता है तो वह दूर तक मार करती है। यहां एक बात का उल्लेख मुनासिब जान पड़ता हे कि उनकी शायरी में दर्द तो है पर मायूसी नहीं। त्रिलोचन के भीतर दुख सहने की ताकत है। फिर वह अपने भीतर के दर्द को करुणा में बदल देते हैं जैसा कि चन्द्रबली सिंह ने लिखा है– "दर्द हमें दूसरों से जोड़ता है, हमारी आत्मा को प्रसार देता है। त्रिलोचन का दर्द ऐसा ही है।"[11] उनका कहना है–

दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी
आके जो बैठ गया मुझसे उठाया ना गया। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 22)

त्रिलोचन एक शेर में कहते हैं इस दर्द ने ही मुझे तुम से मिलाया। आज इसी कारण यह मुझे अच्छा लगता है–

यही दर्द था जिसने तुम से मिलाया
य' यों ही नहीं जी को भाया हुआ है। (वही, पृ. 123)

त्रिलोचन की कविता करुणा एवं संवेदना से अभिभूत है। उनके भीतर इतनी करुणा संचित है कि वह उसके भाव को रोक ही नहीं पाते। उनका 'दाता' भाव सिर्फ देना जानता है। क्या हुआ उन्हें जो प्यार नहीं मिला लेकिन वह दूसरों को तो दे सकते हैं। बड़े ही सहज ढंग से वह अपने दिल की बात कहते हैं–

'कहूं क्या बात आंखों की इन्हें परदा नहीं आता
कहीं कुछ वेदना देखी कि आंसू बह निकलता है।

त्रिलोचन भाव आते हैं तो रोके से नहीं रुकते
कभी झरने को देखा है जो अपनी ढाल ढलता है।' (वही, पृ. 99)

इसी प्रसंग में डा. गोबिन्द प्रसाद लिखते हैं– "त्रिलोचन की कविताओं को पढ़ते हुए कभी दुत्कार, प्रवंचना, अपमान, उपेक्षा और उससे उपजा दर्द सब से एक गहरे दुख की कसक होती है। भीतर तक हिला देने वाला यह दुख जब अपने चरम रूप में अभिव्यक्त होता है तो वह करुणा का रूप ले लेता है।"[12] त्रिलोचन की कविता दूसरों के दुख से अनुरंजित है। एक शेर में उनकी संवेदना देखिये– यात्रा पर निकले हैं रास्ते में लोगों की दुःख की बारिश में भीगते हुए– वह इस बारिश से बचना नहीं चाहते क्योंकि उनकी करुणा उन्हें ऐसा करने से रोकती है–

आंसुओं की झड़ी जहां हर दम,
कैसे फिर भीगे बिना आता तू। (वही, पृ. 83)

यह ठीक है कि दर्द की कोई दवा नहीं या कि भौतिक स्तर पर वह किसी का दुःख नहीं दूर कर पाते। लेकिन किसी दुखियारे से प्यार के दो बोल कहना, उसके माथे पर ममता से हाथ फेर देना ही बहुत है। यह सांत्वना दुखी व्यक्ति को हिम्मत बंधा जाती है–

दर्द जी का है, सुना है दवा नहीं इसकी
हाथ माथे पै जरा फेर दो तो कैसा हो।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 90)

त्रिलोचन की ग़ज़लों में सिर्फ दर्द और दुःख ही नहीं है उसमें इस गम से उबर सकने की कोशिश भी है। कवि हताश होकर चुपचाप बैठ नहीं जाता उसकी आंखों में भविष्य का सपना है। उसका रागी मन कष्टों को सहता हुआ भी जीवन यात्रा पर चलता रहता है। इनकी कविताएं दुखों और विपदाओं के अपार समुद्र में मानवीय सौंदर्य, प्रेम, आशा और स्वप्न का एक ऐसा घनीभूत पुंज है जो हमारे भीतर जीवन के प्रति अगाध विश्वास जगाती है। त्रिलोचन कहते हैं कि कैसी भी कठिन डगर क्यों न हो उसे आसान बनाया जा सकता है अगर हमारे भीतर आत्मविश्वास हो। मैंने अपने संघर्ष के दिनों में यही किया है और दूसरों को भी यही सीख दी है–

'पथ कोई हो, कैसा भी कठिन हो, सुगम्य है,
अपने दिनों में औरों को दिखला गया हूं मैं। (वही, पृ. 80)

अंधेरे को रोशन करना इस फकीर कवि का काम है। वह कबीर की तरह औरों की भलाई चाहते हैं। भले ही इसके लिए कष्ट क्यों न सहना पड़े। उसके भीतर आत्मविश्वास इनता प्रबल है कि चुनौतियों से विचलित नहीं होता। वह अपनी धुन में गाते जाते हैं–

कोई देखे या न देखे काम अपना हो गया,
घोर तम के देश में दीपक जला देता हूं मैं। (वही, पृ. 50),

उन्हें पूरा यकीन है कि उनकी कविता लोगों के दिल में जगह बना रही है। अपने आप को ही जैसे दिलासा देते हुए कहते हैं–

तू हताश न हो त्रिलोचन स्वर ग़ज़ल का ख़ूब है,
सब के हृदयों में बसा है सब के जी को भा चुका। (वही, पृ. 62)

त्रिलोचन ने जीवन के प्रति प्रेम को प्रकृति संबंधी ग़ज़लों में खुलकर अभिव्यक्त किया है। इन ग़ज़लों में इनका उल्लास देखते ही बनता है। (इसका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है)। जीवन के प्रति त्रिलोचन का यह प्रेम, उन लोगों के लिए एक संदेश है जो दुःख से विचलित होकर अवसाद में ही रात–दिन घिरे रहते हैं।

त्रिलोचन की आपबीती में सिर्फ दर्द और वेदना का ही जिक्र नहीं है इसमें उनका स्वाभिमानी मन भी अपनी बात कहता है। इस तरह की ग़ज़लों में हम त्रिलोचन को एक फक्कड़ और स्वाभिमानी शायर के रूप में देखते हैं। श्री चन्द्रबली सिंह के अनुसार– "ग़ज़लों की परम्परा के अनुसार 'गुलाब और बुलबुल' की कविताएं आत्म–व्यंजक है। लेकिन उनके बीच झांकता हुआ व्यक्तित्व दर्द का ही नहीं, स्वाभिमान और अल्हड़ मस्ती का भी है।"[13] इनके कुछ शेरों में यह भावना देखिए–

'बिस्तरा है न चारपाई है

जिंदगी हमने खूब पाई है।

ठोंकरे दर–ब–दर की थीं, हम थे,
कम नहीं हमने मुंह की खाई है। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 28)

कभी–कभी वह एक बेफिक्र और अपनी ही धुन में खोए हुए शायर नजर आते हैं, अपने गमों से बेपरवाह। अपनी ऐसी ही एक छवि वह इस शेर में गढ़ते हैं–

उट्ठा तो चला, चल पड़ा, चलता चला गया
चलने की धुन थी कष्ट का ध्यानी वहां न था। (वही, पृ. 25)

हृदय में प्रेम जगा तो बस चल पड़ा यह मस्त शायर दुनिया की खाक छानने–

प्रेम जो जी में जगा तो विराग ले बैठे
ख़ाक दुनिया की इसी लाग में छानी तुमने। (वही, पृ. 33)

कवि पाता है कि उसने जो धुन छेड़ी है। उसमें स्वर जरूर आएगा। वह अपनी मस्ती में गाता है–

जितने बाजे हैं सभी में कुछ न कुछ स्वर आयगा
अपनी सारंगी जो लेता हूं बजा देता हूं मैं। (वही, पृ. 50)

उम्मीदों की तलाश में वह एक घाट से दूसरे घाट का चक्कर काटते रहते हैं– एक बहुत ही खूबसूरत शेर है–

दुनिया की नदी को मंझाता हूं हर घाट को जा कर देखा है
मन अब भी आशा थामे है क्या जाने उतारा पा जाए।' (वही, पृ. 96)

यहां अब तक त्रिलोचन की आत्मपरक ग़ज़लों की विविध छवियों को उभारा गया है। जिसमें उनके जीवन–राग, व्यक्तिगत सुख–दुख और करुणा की चर्चा की गयी। त्रिलोचन ने आत्मपरक ग़ज़लों के अलावा प्रेम, प्रकृति और सामाजिक यथार्थ पर भी बहुत सी गजलें कही हैं जिनका विस्तृत वर्णन आगे की पंक्तियों में किया जा रहा है।

व्यंग्य

व्यंग्य हिंदी ग़ज़लों की प्रमुख विशेषता है। व्यंग्य का ही स्वर 'हिंदी ग़ज़ल' को उर्दू–फारसी ग़ज़लों की रोमानियत से भरी हुई दुनिया से अलग कर, यथार्थ की भूमि पर प्रतिष्ठित करता है। हिंदी ग़ज़ल व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक और व्यक्तिगत संबंधों में व्याप्त विसंगतियों और विद्रूपताओं पर कड़ा प्रहार करती है। व्यंग्य का स्वर हिंदी के प्रारंभिक ग़ज़लकारों–प्रताप नारायण मिश्र, हरिऔध और निराला की ग़ज़लों में देखा जा सकता है। दुष्यंत एवं उनके बाद के ग़ज़लकारों ने व्यंग्य के माध्यम से हिंदी ग़ज़ल को नई पहचान दी है। आज की हिंदी ग़ज़लों का मूल स्वर ही व्यंग्यात्मक है। डा. रोहिताश्व अस्थाना इस बारे में लिखते हैं– "वस्तुतः हिंदी ग़ज़ल समकालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक चेतना एवं सांस्कृतिक अवमूल्यन के विक्षोभ को लेकर चली है।"[14]

त्रिलोचन ने भी अपने ग़ज़लों में व्यंग्य का सशक्त प्रयोग किया है। व्यंग्य के द्वारा सामाजिक, राजनीतिक जीवन की विद्रूपताओं को उघारा है। डा. सुरेश गौतम के अनुसार– "इस (गुलाब और बुलबुल) संग्रह में कवि ने मात्र ग़ज़ल के रुमानी शास्त्र का ही अनुकरण नहीं किया बल्कि विश्व जीवन के विस्तृत क्षेत्रों में घर की हुई अराजक स्थितियों, अकर्मण्यता के विकृत क्षणों, घिनौनी राजनीति तथा हासशील जीवन मूल्यों पर तीखे और कटु व्यंग्य किए हैं।"[15]

त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों में पूंजीवादी व्यवस्था और अभिजात्य मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया है। पूंजीवादी व्यवस्था के लिए जीवन में कहीं दुख है ही नहीं। उसे अपने चश्मे से चारों ओर सुख और समृद्धि ही नजर आती है। गरीबी और दुख उसकी नजर से बाहर है। उनकी इस मानसिकता पर त्रिलोचन व्यंग्य करते हैं–

दुख भी है वस्तु कोई चौंकते है सुनके वे
अपने गीतों में उसी का क्यों पता देता हूं मैं (गुलाब और बुलबुल, पृ. 49)

इस पूंजीवादी व्यवस्था के पोषकों के लिए दुनिया में कहीं दरिद्रता और बेरोजगारी है ही नहीं क्योंकि स्वयं तो वह पैसे से सब कुछ हासिल कर लेता है

और फिर जब उसे सब कुछ हासिल ही है तो दुख किस बात का– त्रिलोचन कहते हैं–

'काम उसका नहीं अटकता है,
जिस की अंटीं में दाम होता है।

दुख क्या है जो पास पैसा है
ऐसे हाथों में जाम होता है। (वही, पृ. 63)

पूंजीपतियों की चिंता जनता का दुख नहीं अपनी मुनाफाखोरी है। उसका सारा ध्यान पैसा बनाने और जमाखोरी पर लगा रहता है। किसी भी रास्ते को क्यों न अपनाना पड़े अपने पास पूंजी होनी चाहिए, जनता भूखी है तो रहे अपनी बला से ऐसी इन पूंजीपतियों की सोच है। त्रिलोचन ऐसे लोगों की खबर कुछ इस तरह से लेते हैं–

'किसी सेठ के दिल में झांका है उसके कितनी चिंता रहती है
कैसे दुनिया का माल मता सारा का सारा पा जाए'

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 96)

इसी के साथ जरा निराला की यह पंक्तियां मिलाकर देखिए–

'भेद कुल खुल जाय वह, सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय जो, पूंजी तुमहारे मिल में है।'[16]

इन दोनों कवियों ने ही व्यंग्य का सधा प्रयोगकर पूंजीवादी मानसिकता को उघार कर रख दिया है। त्रिलोचन की प्रतिबद्धता जनता के प्रति है। वह जनता के दुख दर्द से एकाकार है। वह जानते हैं कि जहां भूख सबसे बड़ी समस्या हो वहां 'कला' भी किसी काम की नहीं। एक शेर में वह इस सच्चाई पर टिप्पणी करते हैं–

जब नून तेल लकड़ी समस्या हो तब हुआ
ले कर कला को कुछ निखार कोई क्या करे। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 92)

त्रिलोचन संबंधों की कड़वाहट पर भी तीखा व्यंग्य करते हैं। इस देश में सारी धरती को कुटुंब के समान माना गया है फिर भी लोग परिवार के नाम पर ही एक दूसरे से लड़ते रहते हैं। एकता तो सिर्फ कहने की बात है–

'वसुधा कुटुंब है अजी कहने की बात है
आपस की दुश्मनी ने मुझे यह पता दिया' (वही, पृ. 122)

यहां हर कोई एक दूसरे को नीचा दिखाने की फिराक में है। अपने आगे किसी दूसरे की उन्नति नहीं बर्दाश्त कर पाते। त्रिलोचन संबंधों में आये इस ह्रास पर कटु व्यंग्य करते हैं। वह मौजूदा जीवन में व्याप्त छल–कपट पर रोष जताते हुए कहते हैं–

'किसी को किसी का उदय खल रहा है
कहीं जाल रच कर कोई छल रहा है' (वही, पृ. 52)

आज की दुनिया के रंग–ढंग भी निराले हैं। ऊपर से हंसी भीतर नफरत। यह व्यवसायीकरण और जीवन में तेजी से पनपती जा रही कृत्रिमता की देन है–

'खूब संसार का चलावा है
हंस के मिलता है जी में जलता है।' (वही, पृ. 78)

इस दुनिया में दुखियों का कोई नहीं। फिर देवता ही उस पर क्यों मेहरबान हो। जनता से सरोकार रखने वाला कवि दीनों के पक्ष में देवता की भी खबर लेता है–

'खोट है दीन में त्रिलोचन क्या
दैव क्यों उससे वाम होता है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 63)

त्रिलोचन ने एक शेर में बहुत ही चुटीले अंदाज में खुद से भी दिल्लगी की है। वह कहते हैं विपत्ति मेरा पीछा नहीं छोड़ती। उसे तो मुझसे ऐसा प्रेम हो गया है कि कहीं भी रहूं मेरे पीछे चली आती है–

'मैंने देखा विपत्ति का अनुराग
मैं जहां था वहीं चली आई।' (वही, पृ. 113)

चिंतन और जीवन अनुभव

घुमन्तु और फकीरों जैसी जिंदगी जीने वाले त्रिलोचन ने दुनिया–जहान को बहुत करीब से देखा है। शास्त्र से लेकर लोकजीवन का गहरा अनुभव है उन्हें। इसके अलावा वह अपनी जातीय परम्परा से भी जुड़े हुए हैं। उनका अनुभव एक फलसफे के रूप में उनके शेरों में ढ़ल गया है। वह एक दार्शनिक की तरह अपने अशआरों में जीवन मर्म को उद्घाटित करते हैं। सहज बोलचाल के लहजे में कहे गये ये शेर जिंदगी की तल्ख सच्चाइयों को बयान करते हैं। एक शेर में वह कहते हैं– यह जो जिंदगी में रंगीनी है वक्त की मार के आगे फीकी पड़ जायेगी। सुख के दिनों पर वक्त भारी है–

> 'यह जो मुसकान का परदा है त्रिलोचन वह तो
> काल की एक ही फटकार में फट जाएगा' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 121)

जो आया है उसे जाना भी है। मौत जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई है। त्रिलोचन एक शेर में सफेद बालों के बिम्ब द्वारा इस सत्य को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यौवन चिरस्थायी नहीं। सफेद होते हुए बाल ने कवि से इशारा किया –

> श्वेत केशों ने कहा कान में त्रिलोचन से,
> तुम से अब दूर नहीं हैं अधिक जरा, देखा। (वही, पृ. 89)

तो मौत का एक दिन मुमकिन है इसलिए किसी बात का गुमान न करना चाहिए। जो इस सच से बेखबर अपने आप में डूबे हुए हैं उन्हें इस बात का भी ध्यान होना चाहिए कि यह दुनिया धूल का खेल है, दुख के धूल से कोई नहीं बचा–

> धूल का खेल है, दुनिया में धूल उड़ती है
> कौन इस धूल से अब तक हुआ लाचार नहीं। (वही, पृ. 19)

त्रिलोचन कहते हैं कि सुख–दुख जीवन के दो पहलू हैं। इसे स्वीकारना ही होगा। इसी में जीवन का मर्म छिपा हुआ है। जो इस बात को समझ गया वह किनारा पा गया–

'अजब जिंदगी है अजब जान भी है
अगर शाप है यह तो वरदान भी है।

त्रिलोचन अनोखी पहेली है जीवन
जो शंका है यह तो समाधान भी है।' (वही, पृ. 112)

'जाने' वाले के लिए दुखी होने से अच्छा है उसे मुस्करा कर विदा कर देना क्योंकि हमारे रोने और दुखी होने से गया हुआ वक्त वापस तो आता नहीं इससे अच्छा है जीवन की इस सच्चाई को समझ हम हर परिस्थिति का मुस्करा कर सामना करें। त्रिलोचन कहते हैं–

'रोकना जिसका कठिन है, जो चला ही जाएगा,
मुस्करा के उसी बटोही को विदा देता हूं मैं' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 51)

सामाजिक यथार्थ

त्रिलोचन की ग़ज़ले सामाजिक यथार्थ के बेहद कटु अनुभवों को भी सामने रखती हैं। उनके शेर इस बाहर से खूबसूरत दिखने वाली दुनिया के स्याह पहलुओं को उजागर करते हैं। इनमें आदमी की मुफलिसी का जिक्र तो है ही उसे इस हाल में पहुंचा देने वाले कारणों की पड़ताल भी है। एक शेर में वह इस कड़वी सच्चाई को बयान करते हैं कि दुनिया में गरीबी तो बहुत है पर इस गरीबी को दूर करने के लिए आज तक कितनी ईमानदारी कोशिशे हुई? सच तो यह है कोई कुछ नहीं करना चाहता–

जिंदगी कितनों की कटती है आस्मां के तले,
एक छप्पर भी किसी से यहां छाया न गया। (वही, पृ. 22)

दरिद्रता, अभाव और भूख का हाल तो ऐसा है कि छप्पर तो छोड़िए दीवारें भी नसीब नहीं है। जिंदगी दिन पर दिन दुश्वार होती जा रही है। हाल यह हो गया है कि अपना घर भी खोना पड़ रहा है–

लोनी लग–लग के कट चली दीवार
सूरत आई है घर के खोने की। (वही, पृ. 41)

ऐसे हाल में कोई क्या जी पायेगा। ऐसे कठिन समय में जहां सर पर छत नहीं, खाने को रोटी नहीं वहां लोग जिंदगी जीने के लिए नहीं मरने के लिए जीते हैं। एक शेर में वह आम आदमी की इस पीड़ा को बेहद मार्मिक ढंग से सामने रखते हैं–

आदमी जी रहा है मरने को
सब के ऊपर यही सचाई है। (वही, पृ. 29)

त्रिलोचन अभावग्रस्त जनता की पीड़ा को बिना किसी शोर–शराबे के जिस तरह सधे हुए किन्तु प्रभावी ढंग से शब्दों में ढ़ालते हैं वह ह्दय को भीतर तक बेध जाता है। भूख की पीड़ा को कोयल के बिंब द्वारा इस तरह प्रकट करते हैं–

'चुप देख के दोष उसे मत दो कोयल का काम ही गाना है
अभी जान लड़ कर गाएगी यदि पेट को चारा पा जाए।' (वही, पृ. 96)

पूंजीवादी समाज श्रमिक वर्ग से सिर्फ काम लेना जानता है उसे उसके पेट की चिंता नहीं रहती। एक श्रमिक जो भूखा–प्यासा है उस पर कोई दोष लगाने से पहले उसकी जरूरतें भी तो देख लेते। जो श्रमशील है वह काम तो करेगा ही अगर उसके पेट में अन्न के दाने हों। कहा भी गया है कि 'भूखे पेट भजन होय न गोपाला'। जब भूखे पेट भजन नहीं हो सकता तो कोई श्रम का कार्य कैसे करेगा। त्रिलोचन कहते हैं आज का समय ऐसा हो गया है कि भूखों को भोजन देने के बजाय उन्हें गीत–संगीत सुनाकर फुसलाया जा रहा है। यह आज के पूंजीवादी समाज की बहुत बड़ी सच्चाई है कि वह जनता का ध्यान उसकी बुनियादी जरूरतों से हटाकर ख्याली दुनिया के सपने दिखलाता है–

'गीत संगीत उन्हें किस लिए सुनाते हो
जिन को दो जून कभी मिलता है खाना भी नहीं।'

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 73)

इसी प्रसंग में तुलसीदास याद आते हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में पेट की आग का हृदय विदारक वर्णन किया है। उन्होंने कवितावली में स्पष्ट कहा है कि सारे समाजतंत्र का आधार पेट अर्थात् आर्थिक शक्ति है। वह कहते हैं कि पेट की आग सबसे बड़ी है–

'तुलसी बुझाई एक राम घनश्याम ही तै
आग बड़वागि तें, बड़ी है आग पेट की'[17] (कवितावली)

त्रिलोचन को हिंदी की जातीय परम्परा के संघर्षो का स्मरण है उनकी कविताओं में उस परम्परा के संघर्ष की अनुगूंजे सुनी जा सकती हैं। इस बारे में डा0 रामविलास शर्मा लिखते हैं– "भूख, उपवास और बेरोजगारी पर जैसी अनुभूति तीव्रता त्रिलोचन की कविताओं में है वैसी अन्य किसी प्रगतिशील कवि में नहीं। लगभग वैसी ही अनुभूति जैसी तुलसी और निराला की आत्मकथात्मक पंक्तियों में है। ऐसी पंक्तियों में ट्रैजिक औदात्य है, नैतिक दृढ़ता से मंडित मानवीय गरिमा है।"[18]

त्रिलोचन भूखी मानवता के पक्ष में, गरीबों का मजाक उड़ाने वालों पर कठोर शब्दों में प्रहार करते हैं। वह साफ कहते हैं कि–

'तुम्हें इसकी शिकायत किसलिए हो रोजी की तलाश किसे नहीं हैं
रोटी ही विजय है जीवन की यदि भूखा हारा पा जाए।' (वही, पृ. 96)

त्रिलोचन की यथार्थ दृष्टि सिर्फ वर्तमान जीवन की सच्चाई ही नहीं देखती है वह जनता पर मंडरा रहे नये खतरों की भी पहचान करती है। वह कहते हैं कि साम्राज्यवाद ने भले ही हमारे देश को या दुनिया के अन्य गुलाम देशों को आजाद कर दिया हो पर उसकी पिपास नये–नये रूपों में शोषण करने के तरीके ढूंढ रही है। अगर हम अपनी आजादी के मद में चूर रह कर इस खतरे को नहीं भाप पाये तो एक बार फिर से उनका उपनिवेश बनकर रह जायेंगे–

'साम्राज्य उपनिवेश अब भी खोज रहा है
हे मुक्त भूल मत कि कृपा कर चला गया।' (वही, पृ. 103)

त्रिलोचन की ग़ज़लें आधुनिक सभ्यता की विसंगतियों पर भी टिप्पणी करती हैं। आज मनुष्य भौतिक रूप से बहुत उन्नत हो गया है पर इसके साथ ही वह नई सभ्यता का गुलाम भी होता जा रहा है। उन्नति के साथ उसने यंत्रों पर निर्भरता भी हासिल की है। इस भौतिक सभ्यता ने उसे अकेलापन, घुटन और संत्रास भी दिया है। वह दुनिया की चकाचौंध में अपने आप से ही अलग होता जा रहा है–

'समुन्नति मनु के बेटों ने बहुत की इस में क्या कहना
मगर वह यंत्र पर ही और निर्भर होता जाता है।'

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 102)

इसी संदर्भ में डा. रोहिताश्व अस्थाना लिखते हैं– 'त्रिलोचन शास्त्री की ग़ज़लों में आधुनिक सभ्यता का यथार्थ चित्रण किया गया है। महंगाई, बेरोजगारी एवं घुटन से परिपूर्ण महानगरीय वातावरण से उत्पन्न कुंठा एवं संत्रास को त्रिलोचन ने स्वर प्रदान किया है।'[19]

आधुनिक सभ्यता ने मनुष्य को स्वार्थी बनाया है। उसकी सहजता और सहृदयता खो गयी है। हर आदमी एक दूसरे का गला काट कर केवल अपनी प्रगति चाहता है। त्रिलोचन जीवन में बढ़ते हुए स्वार्थ की भावना पर एक शेर में कहते हैं–

'प्रशंसा परार्थानुसंधान की है
कहां स्वार्थ का रंग गहरा न देखा। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 59)

आज के युग में शांति स्वप्न की बात हो गई है। आपस की दुश्मनी, बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा की भावना ने हिंसा को बढ़ावा दिया है। दो समुदायों के बीच हिंसा हो या दो व्यक्तियों के बीच शांति के लिए पहल कोई नहीं करता है। हाल यह हो गया है कि शांति व्यवस्था बनाने के लिए भी बल प्रयोग की जरूरत पड़ रही है–

क्यों बेकार ही ख़ाक दुनिया की छानी
जहां शांति भी चाहिए तो समर है। (वही, पृ. 64)

आदमी की सच्चाई तो उसके संकट में दिखती है। त्रिलोचन कहते हैं कि आदमी की डगर आसान नहीं वह कैसे आज जीता है इसका पता तो उसके संकट की घड़ी में चलता है। सुख के दिनों में संघर्ष का पता नहीं चलता इसके लिए कभी दुःख के दिन भी देखने की हिम्मत करो–

'मनुज मिट मिट के बनता है कभी बन बन के तनता है
सचाई देख पाओगे जो वज्राघात में आओ।' (वही, पृ. 53)

नैतिकता, संघर्ष, श्रम और कर्म

त्रिलोचन किसान जीवन के कवि हैं। किसान के लिए सबसे बड़ी पूंजी है उसका कर्म। कर्म के द्वारा ही वह जीवन को संभव बनाता है। त्रिलोचन ने कर्म और श्रम के महत्व को समझते हुए उसे अपनी काव्य चेतना में सर्वोपरि स्थान दिया है। उनकी ग़ज़लों में भी श्रम और कर्म की प्रतिष्ठा है। कर्म के प्रति उनका यह आग्रह उन्हें रोमांटिक ग़ज़लकारों की परम्परा से अलगकर, उनकी शायरी को श्रमशील जनता के पक्ष में रखती है। उनके ग़ज़लों में निराशा और वेदना की झलक तो मिलती है पर वह दुख में ही डूबे नहीं रहते अगली सुबह की तलाश में कर्म पथ पर निकल पड़ते हैं। उनके शेरों में कर्मपथ पर बढ़ते हुए उत्साह, उमंग और कर्मठता का उद्‌बोधन मिलता है।

एक शेर में त्रिलोचन कहते हैं कि अभावों और कठिनाइयों के बाद भी जी रहा हूं क्योंकि हमारी रगों में परिश्रम का खून दौड़ रहा है। यह वह किसानी सामर्थ्य है जो अपने श्रम से बंजर में भी पौधा उगा देता है–

'जीते हैं आज हम त्रिलोचन यह,
बल रगों में अनाज क़ा ही है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 79)

इस बारे में नंद किशोर नवल की टिप्पणी है– 'त्रिलोचन का आदर्श वह जीवन रहा है, जो अभावों में भी अपनी शक्ति का प्रमाण देता रहता है, जैसे बिना

पानी के भी चट्टानों की दरार में उग आने वाला दूर्वांकुर।'[20] त्रिलोचन परिश्रमशील जनता का आह्वान करते हैं– अभाव है तो क्या हुआ हमें चलना है, संघर्ष करना है, लक्ष्य पाना मुश्किल नहीं–

'मित्रो उठो कटि बांधों तुम्हें दूर जाना है
लक्ष्य का स्वप्न सत्य भी है देख आना है।' (वही, पृ. 114)

जो श्रम करेगा वही संघर्षों से पार पायेगा। भाग्य के भरोसे बैठे रहे तो केवल दुःख ही झेलेंगे। अभाव और संकटों पर मनुष्य ने अपने श्रम से ही विजय पायी है–

'हाथ और पांव जिसका चलता है,
आया संकट भी आप टलता है।' (वही, पृ. 78)

त्रिलोचन आलसियों और भाग्यवादियों की कड़ी आलोचना करते हैं। बिना प्रयास किये किसी संकट का कहां समाधान होता है? जो होना है वह तो होकर रहेगा इस डर से हम चुप क्यों बैठे रहें। हमारा काम कोशिश करना होना चाहिए–

यत्न कर यत्न, यों पूजा पै बैठ जाने से
संकट आए हैं, नहीं इससे टला है कोई। (वही, पृ. 57)

जयशंकर प्रसाद भी अपनी ग़ज़लों में भाग्यवादियों को लताड़ते हैं–

'कुछ करोगे कि बस सदा रोकर
दीन हो देव को पुकारोगे।

सो रहे तुम न भाग्य सोता है
आप बिगड़ी तुम ही सवांरोगे।'[21]

त्रिलोचन श्रम की बात दूसरों के लिए ही नहीं कहते, श्रम उनका जीवन दर्शन है। उन्होंने अपना सफर श्रम करते हुए तय किया है। इसीलिए उनमें स्वाभिमान और नैतिक सच्चाई झलकती है। जिसने संघर्ष और कर्म किया है वही नैतिक मूल्यों और नसीहतों की बात कर सकता है। त्रिलोचन की ग़ज़लों में

जिंदगी की नसीहतें हैं। वह लोगों को आगाह करते हैं कि स्वार्थ से बचो। स्वार्थी बनकर धरती का बोझ मत बढ़ाओ–

'और जैसा कर रहे हैं तू न कर
स्वार्थ के सीसे से भारी भू न कर।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 76)

अपने मतलब के लिए दूसरों की जिंदगी में अंधेरा मत करो। अगर तुम खुद के लिए अंधेरा नहीं चाहते तो दूसरे के लिए भी ऐसा ही सोचो–

'लोग अंधियार से डरते हैं और बचते हैं
लाभ लेने के लिए तू कभी अंधियार ने कर।' (वही, पृ. 39)

सच्चाई की राह बहुत कठिन है लेकिन संघर्ष से घबराकर यह रास्ता छोड़ना नहीं चाहिए क्योंकि अंत में जीत सच की होती है। झूठ की आग उसे कभी नहीं जला सकती। त्रिलोचन को दृढ़ विश्वास है कि–

अनल कितना दाहक है, मालूम है,
मगर सत्य को वह न दह पायगा। (वही, पृ. 28)

जीवन का असली सुख तो दूसरों को सुख पहुंचाने में है जो केवल अपने ही सुख की बात सोचता है वह इस सुख को क्या जाने। दूसरों की मदद कर जो संतोष मिलता है उसका आनंद स्वार्थ के सुखों से परे है–

'सुख जो औरों को दे सुखी वो है
इस का आनंद भी लहोगे क्या।' (वही, पृ. 37)

त्रिलोचन के ग़ज़लों में उनके स्वाभिमानी व्यक्तित्व की झलकियां भी मिलती हैं। त्रिलोचन का जीवन चुनौतियों और संघर्षों से भरा रहा। राह में तमाम मुश्किलें आईं। लेकिन वह परिस्थितियों के आगे घुटने टेकने से अधिक संघर्ष करने में विश्वास रखते थे। त्रिलोचन समझौतावादी रुख अपनाने से ज्यादा संघर्ष करना पसंद करते थे। गलत चीजों का वह हमेशा विरोध करते रहे। उन्हें अपने लाभ के लिए दूसरे का हक मारना पसंद नहीं इसके लिए चाहे कितनी ही तकलीफें क्यों न उठानी पड़े। वह एक शेर में गर्व के साथ कहते हैं–

'कुछ तुमने भी सुना है त्रिलोचन की उक्ति है
औरों को खा के जीते हैं जो उन में हम नहीं।' (वही, पृ. 118)

उन्हें अभाव और कष्ट में जीना स्वीकार है। पर दूसरों की दया पर नहीं पलना चाहते। त्रिलोचन कहते हैं गरीबी में सिर्फ लोग करुणा की भीख देते हैं। सही मदद कोई नहीं करता। वह इस झूठे दिखावे से तंग आकर कहते हैं–

करुणा की भीख मुझ को कभी मत दो त्रिलोचन
कुछ बात है कि भीख से उकता गया हूं मैं। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 80)

वह दुःख में किसी का मजाक नहीं उड़ाते। किसी का अपमान करके खुश होना उनकी आदत नहीं। वह दो टूक लहजे में कहते हैं कि अगर भूल से भी मैंने कभी किसी का कुछ नुकसान या अपमान किया हो तो बताओ?

'किस का हमने किया नुकसान कोई कह तो दे
भूल के भी किया अपमान तो कह तो दे। (वही, पृ. 34)

वह तो उल्टा दूसरे की मदद करना जानते हैं। उनका संवेदनशील हृदय किसी को दुःखी नहीं देख पाता। जहां कहीं भी किसी को कष्ट में देखते हैं उनकी मदद को पहुंच जाते हैं–

'देखा कहीं जो बोझ से दबते किसी को भी
नजदीक जा के कांध लगाया यहां वहां।' (वही, पृ. 54)

उन्हें इस बात का गर्व है कि जीवन संग्राम वे हारे नहीं। क्या हुआ अगर सिद्धि नही मिली उन्होंने संघर्ष किसा है और संघर्ष करते रहना ही सबसे बड़ी उपलब्धि है। कम से कम इसमें आलसियों की तरह अकर्मण्य तो नहीं हो जाते–

'कुछ बात है कि आज भी हारा नहीं हूं मैं
सौभाग्य और सिद्धि का प्यारा नहीं हूं मैं।' (वही, पृ. 55)

प्रणय

प्रेम या इश्क ग़ज़लकारों का पसंदीदा विषय रहा है। उर्दू शायरी का एक दौर ऐसा भी था जब इश्क और ग़ज़ल एक दूसरे के पर्याय बन गए थे। आगे चलकर जब

उस पर मौजूदा जिंदगी का तनाव हावी हुआ तो शायरों ने ग़ज़ल को दुनिया जहान के अन्य मुद्दों की ओर भी मोड़ा, लेकिन इश्क का असर कभी कम न हुआ। वह अब सामाजिक यथार्थ से जुड़कर अभिव्यक्त होने लगी। गो कि हिंदी ग़ज़लों में भी इश्क की बातें मिलती हैं पर उनके अपने मिजाज में। हिंदी ग़ज़ल में इश्क सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त हुआ है। वहां कल्पना की उड़ान की जगह जिंदगी की तल्ख सच्चाइयों का बयान है। त्रिलोचन ने जो ग़ज़लें लिखी हैं उनमें प्रेम का चित्रण सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि में ही हुआ है। त्रिलोचन ने प्रेम पर स्वतंत्र रूप से कोई ग़ज़ल नहीं लिखी है। वह विभिन्न संदर्भो में छिटपुट बिखरी हुई मिलेगी। जिसका जीवन ही 'दुख की कथा रही' हो उसे प्यार के लिए अवकाश ही कहां है। फिर भी त्रिलोचन प्रेम को बहुत महत्व देते हैं। वह जीवन राग के कवि हैं। जिंदगी से प्यार करने वाला कवि प्रेम को किसी न किसी रूप में चित्रित करेगा ही चाहे वह किसी प्रेयसी से प्रणय की बात कहे या खुद जीवन को ही प्रेयसी के रूप में चित्रित करे।

त्रिलोचन के यहां प्रेम रूढ़ियों से मुक्त होकर बहुत ही व्यापक और स्वस्थ रूप में अभिव्यक्त हुआ है। उनके प्रेम में ऐकांतिकता की जगह सामाजिकता है। यहां इश्क में तड़पना और रोना नहीं मुक्ति की चेतना है। यहां प्रेम "कल्पना में नहीं यथार्थ के धरातल पर विकसित होता है। यह प्रेम जीवन जगत से दूर एकान्त में नहीं ले जाता। वह जीवन की लय पैदा करता है। जगत–जीवन का प्रेमी बनाता है। यहां प्रेम शौक नहीं है, वह जीवन की अनिवार्यता है।"[22] अपने एक ग़ज़ल में प्रेम की इस जरूरत को अनुभव करते हुए वह कहते हैं–

> 'तुम्हारी बातें सोची और अपनी बात भी सोची,
> इन्हीं दो बिंदुओं के बीच जीवन की विकलता है।
>
> अकेलापन मुझे भी काटता है आज ही जाना,
> कसम मेरी बताना सच तुम्हें भी यों ही खलता है।'

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 99)

प्रेम इस संसार का सबसे बड़ा सत्य है। वह जीवन का महाराग है जो जड़ को भी चेतन बना देता है। प्राणों में पुलक भर देता है। जीवन में स्फुरण, प्रेरणा, उल्लास आदि सब कुछ प्रेम राग के कारण ही है। त्रिलोचन प्रेम की इस ताकत को खूब पहचानते हैं। तभी तो वह कहते हैं–

'यह प्रेम था कि प्राण मुर्दे में पहन गया,
जिस जिस से मिला भेद बताया यहां वहां।' (वही, पृ. 54)

प्रेम के आगे संसार की सभी कीमती वस्तुएं तुच्छ हैं। उनका मूल्य मिट्टी के ढेले के बराबर भी नहीं। प्रिय का सानिध्य हो तो फिर और किसी चीज की इच्छा रह ही नहीं जाती। त्रिलोचन अपने एक शेर में इस इच्छा को यूं बंया करते हैं–

'रहो आंखों में मेरी कामना यदि है तो इतनी है
तुम्हारी बांह है अपने गले में हार क्या होगा' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 108)

त्रिलोचन प्रेम में स्वभाविकता पर बल देते हैं। वहां कृत्रिमता और दिखावे के लिए कोई जगह नहीं है। प्रेम समर्पण मांगता है, उसकी धारा में बहना होता है। अपने हृदय को खोलकर रख देना होता है–

'नहीं गांठ जिसके हृदय की खुली
व' क्या प्रेम धारा में बह पाएगा' (वही, पृ. 27)

प्रेम हृदय की गहराइयों से निकलकर सारी सृष्टि में व्याप्त हो जाता है। प्रेम में वही सफल होता है जो अपने भीतर से राग पैदा करता है–

'चलेगा वही शान से अपनी राह
जो प्रेम अंतर से गह पाएगा।' (वही, पृ. 27)

जो केवल बाहरी चकाचौंध में ही खोया रहता है वह जिंदगी भर केवल धड़कन ही गिनता रह जाता है–

'जो धड़कन ही इस दिल की गिनता रहा,
व क्या राज फिर दिल के कह पायगा।' (वही, पृ. 27)

त्रिलोचन के ग़ज़लों में प्रेम केवल वैयक्तिक संबंधों तक सीमित नहीं है, वह धरती के सभी प्राणियों से अनुराग रखते हैं। उन्होंने प्रेम को सामाजिक संदर्भों में रूपायित किया है। उनके ग़ज़लों में वर्णित प्रेम की जो सामाजिकता है वह एक व्यक्ति से उठकर सारी धरती आकाश में व्याप्त हो जाने वाली बदली के समान है। त्रिलोचन स्वार्थ के रिश्तों को तोड़कर विराट विश्वमानवता से जुड़ने की बात कहते हैं–

'बंधनों का मोह जल्दी छोड़ देना चाहिए
विश्व से संबंध अपना जोड़ देना चाहिए' (वही, पृ. 72)

वह दुख से दग्ध प्राणियों पर अपना प्यार लुटाना चाहते हैं। उनकी करुणा उन पर बरस जाना चाहती है–

'जो जले तप–ताप के अपने त्रिलोचन उन को तो
प्रेम पावन और शीतल क्रोड देना चाहिए।' (वही, पृ. 72)

बंधनों और आडम्बरों से मुक्त यह प्रेम जीवन के हर क्षण और हर कण में व्याप्त है। वह किसी खास समय का इंतजार नहीं करता–

'प्रेम में दिन घड़ी नहीं कुछ भी
व्यर्थ उस के लिए मुहूरत है।' (वही, पृ. 48)

प्रेम जीवन के सूनेपन को भरता है। एकाकी जीवन जी रहे व्यक्ति के जीवन में प्रेम का आगमन उसके लिए खुशियों की सौगात लेकर आता है। हृदय कलिका खिल उठती है। सोये हुए राग जाग उठते हैं। व्यक्ति को सारी सृष्टि प्रणय से अनुरंजित दिखती है। उसे लगता है संसार की सबसे बड़ी निधि मिल गई है। त्रिलोचन का एक शेर इस भाव को बड़ी सुंदरता से अभिव्यक्त करता है–

'भेद जीवन के पा गया कोई
सूने मन में जो आ गया कोई' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 70)

लगातार दुख झेलते हुए और संघर्ष से थकी हारी जिंदगी को प्यार का अहसास नई ऊर्जा से भर देता है। लम्बे समय से प्रिय से कहीं दूर हो और उनका

एक पत्र मिल जाए तो फिर क्या कहना। रोजगार के सिलसिले में प्रवासी का जीवन बिता रहे व्यक्ति के लिए तो प्रिय के पत्र का ही एक आसरा है। त्रिलोचन प्रवासी जीवन के इस सूनेपन को खूब समझते हैं। वह एक शेर में कहते हैं–

'आप से पत्र जो इधर आया
रंग इस सूनी डाल पर आया' (वही, पृ. 38)

और जब प्रिय का पत्र भी न मिले तो बाकी रह जाती है उसकी स्मृति। कवि के मानस पर प्रिया की जो छवि अंकित है उसी छवि को याद कर वह अपने दुख के दिन बिता देता है। उसकी यादों में खोकर वह अपने दुखों की रातें ही नहीं दिन भी भुला बैठता है। एक बहुत ही मार्मिक शेर है–

'जो तुम्हारी याद आई तो उसी में खो गया
रात की तो बात क्या दिन भी बिता देता हूं मैं। (वही, पृ. 50)

फिर अपने जीने की सूरत वह कुछ इस तरह से ढूंढ निकालता है–

'यह भी जीने की एक सूरत है
मन के मंदिर में उनकी मूरत है।' (वही, पृ. 48)

त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्यार के न मिल पाने की कसक भी है। उनके एक शेर में प्रिय से अपने दिल की बात न कह पाने की टीस प्रकट हुई है। कवि प्यार तो करना चाहता है लेकिन जिंदगी की कठिनाइयों में उलझकर ही रह गया। प्रिय से प्रणय निवेदन कर ही नहीं पाया–

'तड़पता हूं मगर मैं नाम तेरा ले कहां पाया
कभी तेरे किनारे नाव अपनी खे कहां पाया।' (वही, पृ. 69)

कवि दुनिया की भीड़ में अपने को अकेला महसूस करता है। यहां एक से एक सुंदर चेहरे हैं लेकिन उसे कहीं कोई अपना नहीं नजर आता। सब बेगाने से जान पड़ते हैं–

'य' आकाश है इसमें तारे ही तारे,
मगर इसमें मेरा व' तारा नहीं है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 30)

जीवन में प्यार के न मिल पाने पर वह दुखी तो होता है पर विलाप नहीं करता। वह यह सोच कर जैसे संतोष कर लेता है 'जो नहीं है उसका क्या गम' और अगले ही क्षण विराट जीवन के महाराग में डूब जाता है बसंत के गीत रचने के लिए। कवि की जीवानाभिमुखता उसे अरण्य रोदन से बचाती है। उसे उम्मीद है प्यार के दिन जरूर आयेंगे, पहले जीवन को तो प्यार कर लें–

'आज मधु मास आ रहा है फिर
और पिक गान गा रहा है फिर।

फूल ऋतुराज को मिले, मन भी
नए विश्वास पा रहा है फिर।

बात क्या कह दी त्रिलोचन तुमने
रंग जीवन में आ रहा है फिर' (वही, पृ. 74–75)

त्रिलोचन यह जानते हैं संसार में कुछ भी स्थायी नहीं। रात के बाद दिन है, फिर रात। यह क्रम चलता रहता है। फिर जब सुख–दुख का क्रम भी निश्चित नहीं है तो हम हमेशा पाने की ही उम्मीद क्यों करें? प्यार में मिलना और बिछुड़ना तो लगा ही रहता है–

'इस क्षण मिलाप है तो किसी क्षण बिगाड़ है
यह प्रेम भी विचित्र है कुछ भी तो कम नहीं।' (वही, पृ. 118)

त्रिलोचन के लिए प्यार में पाने से ज्यादा महत्वपूर्ण है प्रेम के प्रति निष्ठा और समर्पण का भाव। प्यार सिर्फ पाने का नाम नहीं उसमें देना होता है। जो प्यार की धारा में खुद को बहा देता है वही किनारे तक पहुंच पाता है। बूंदें भी बरसने के बाद ही दरिया से मिल पाती हैं। त्रिलोचन प्रिया के लिए कहते हैं तुमने मेरे लिए सब कुछ त्याग दिया फिर कैसे कह दूं कि आज तुम्हारा नहीं हूं। प्रिय के प्रति अपनी आत्मीयता प्रकट करते हुए कहते हैं–

'मेरे लिए संसार, स्वजन, प्राण तज दिया,
फिर कैसे कह दूं आज तुम्हारा नहीं हू मैं।' (वही, पृ. 55)

त्रिलोचन की ग़ज़लों में प्रेम की नाकामी पर उर्दू–फारसी शायरी वाले विलाप की छाया नहीं है। उनमें ऊहात्मक और डवलनशील आवेगों की अभिव्यक्ति नहीं मिलती। प्यार के न मिलने पर वह दुःखी तो होते हैं पर आंसुओं मे ही डूबकर नहीं रह जाते उनका संतोषी मन अपने को यह सोचकर तसल्ली दे लेता है कि–

मैंने और कुछ न किया तुझ को हृदय दे डाला,
जीत वह मेरी है और जीत कभी हार नहीं।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 19)

सच्चे प्रेम के लिए जीत हार कोई मायने नहीं रखता यदि प्यार की भावना हृदय में है तो फिर किसी बात की चिंता नहीं, रोने से कोई फायदा नहीं–

'क्या हुआ, लोग जो हंसते हैं उन्हें हंसने दो
प्रेम की पीर में आंसू तो बहाया न करो।' (वही, पृ. 18)

यहां मीर का एक शेर याद आता है जिसमें वह प्यार न मिल पाने पर भी सबकी सलामती की कामना करते हैं–

'फकीराना आये सदाकर चले
मियां खुश रहो हम दुआ कर चले।'[23]

त्रिलोचन के प्रेम में वेदना तो है पर किसी तरह की निराशा, कुंठा नहीं। उसका प्रेम बंधनों से मुक्त होकर बहुत ही स्वस्थ और व्यापक रूप में है जहां वह सबके लिए 'स्नेह' का आकांक्षी होता है–

स्नेह की भूख आदमी को है
स्नेह मिल जाय फिर कमी क्या है। (वही, पृ. 106)

अंत में कह सकते हैं कि जीवन में कुछ रहे या न रहे प्यार जरूर बाकी रहेगा–

'महत्प्रम का जो महासौध है
रहेगा, रहेगा, न ढह पायगा।' (वही, पृ. 27)

कुल मिलाकर त्रिलोचन के प्रणय संबंधी ग़ज़लों की यही विभिन्न छवियां हैं। समर्पण की भावना से दीप्त, विराट और व्यापक, संबंधों की सघनता लिए, आशा

और उल्लास से भरापूरा जीवंत प्रेम जो एक व्यक्ति से ऊपर उठकर सारी मानवता और प्रकृति में व्याप्त है।

प्रकृति

त्रिलोचन के 'गुलाब और बुलबुल' में संवेदना का एक धरातल और है– प्रकृति। "भौतिक जीवन के प्रति त्रिलोचन के मन में जो आकर्षण है उसका अकाट्य प्रमाण है उनका प्रकृति प्रेम। प्रकृति उनकी चेतना का अंग है इसलिए वह विभिन्न रूपों में उनकी कविताओं में आती हैं।"[24] प्रकृति के प्रेमी कवि त्रिलोचन ने इस संकलन की ग़ज़लों में प्रकृति के विविध रंग बिखेरे हैं। कहीं इनमें प्रकृति का सहज उल्लास चित्रित है तो कहीं प्रकृति के माध्यम से जीवन–यथार्थ का चित्रण। वह अपनी आपबीती भी प्रकृति को संबोधित करते हुए सुनाते हैं। प्रकृति त्रिलोचन की कविता में शक्ति बनकर आती है। जीवन की निराशा को प्रकृति की सुषमा दूर करती है। उसमें आशा और उल्लास है। उर्दू–फारसी ग़ज़ल परम्परा में प्रकृति प्रायः वेदना और निराशा की पृष्ठ भूमि में आई है। उसका शायर चांद और सितारों में भटकता है। उसके तसव्वुर में दूर तक फैला सहरा, घनी अंधेरी रात है। वहां शमां पर परवाने के मिटने का जिक्र है। त्रिलोचन की शायरी में प्रकृति की खूबसूरत सुबह है। बसंत का सौदर्य है। "वह चांद सितारों में भटकने के बजाय खेतों, खलिहानों, जलाशयों, और नदी–नालों के कल–कल प्रवाह में अधिक रमते हुए दिखाई देते है। उनकी कविता अति कल्पना की छलांग लगाने के बदले यथार्थ की जमीन पर चलती हुई नजर आती है।"[25] वह निराशा के कुहासे को काटती है। उसमें अंधकार लगभग नहीं है। धूप, चांदनी, ऊषा और किरणों का प्रकाश है। प्रकृति अपने जनपदीय अनुभवों के साथ प्रकट होती है। हिंदी ग़ज़ल में प्रकृति के इस स्वतंत्र रूप को प्रकट कर त्रिलोचन जी ने उसे एक नया आयाम दिया है साथ ही उर्दू ग़ज़ल की परम्परा में संस्कृत और हिंदी की परम्परा का सुंदर मिलन भी किया है।

त्रिलोचन की प्रकृति विषयक ग़ज़लों में उनका ठेठ देशी अनुभव बोलता है। उनकी ग़ज़लों में जातीय जीवन के प्राकृतिक परिवेश का उनका बोध प्रकट होता है। इस बारे में डा. सुरेश गौतम लिखते हैं– "इन ग़ज़लों का प्रमुख आकर्षण इसमें

अंकित जनपदीय अनुभवों विश्वासों और संस्कारों का चित्रण है। आम, बसंत, मंदिर, फागुन, ऋतुराज, मेघ, कोपल, कोयल की पंचम तान जैसे शब्द जिनका उर्दू ग़ज़ल में प्रयोग लगभग नहीं होता है त्रिलोचन की ग़ज़लों में पर्याप्त है। यहां यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि ये मात्र शब्द–प्रयाग भर के लिए नहीं हैं अपितु उस जीवन की सच्चाई को व्यक्त करते हैं जिसका हमारे संस्कारों से गहरा संबंध है। इसके अतिरिक्त इसमें हिंदी की उस परम्परा से जुड़ने का भी प्रयास है जिससे हिंदी कविता का संसार बनता है। अतः यह अकारण ही नहीं कि त्रिलोचन ने बसंत के आगमन पर एक पूरी ग़ज़ल ही लिखी है। वे लोक जीवन से जुड़ने के लिए बसंत के आगमन की उस घटना का चित्रण करते हैं जिसमें प्रकृति समाज और व्यक्ति उसका स्वागत करते हैं। कोयल गाती है। आमों में बौर आता है, हवा में बदलाव आता है, टहनियों में नए पत्ते आते हैं और गांवों, चौपालों पर ढोल मंजीरे के साथ उसका अभिनंदन किया जाता है।''[26] इस ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

'कोकिल ने गान गा के कहा आ गया बसंत
आमों ने मौर ला के कहा आ गया बसंत।

हर टहनी में जीवन के नए पत्र आ गए,
पीपल ने दल दिखा के कहा आ गया बसंत।

खोती हुई तैयार रंग भी निखर चला
कुछ वायु ने समझा के कहा आ गया बसंत।

चौताल की लहर में बोल ढोल के उठे,
गांवों ने फाग गा के कहा आ गया बसंत।' (गुलाब और बुलबल, पृ. 56)

जीवन का सहज उल्लास और राग त्रिलोचन ने प्रकृति के माध्यम से प्रकट किया है। यह उनकी जीवंतता का प्रमाण है कि वह प्रकृति के क्रिया–व्यापारों में हसंती–खेलती जिंदगी तलाश कर लेते हैं। वह प्रकृति को जड़ रूप में चित्रित नहीं करते उसमें जीवन की हलचल पैदा करते हैं। संग्रह की कई ग़ज़लों में प्रकृति का उत्सवधर्मी रूप देखते ही बनता है। होली के आगमन पर मनुष्य के जीवन में ही खुशियां नहीं आती सारी प्रकृति भी उल्लास से भर उठती है। प्रकृति के साथ

एकाकार कवि त्रिलोचन अपनी एक ग़ज़ल में होली की छेड़छाड़ प्रकृति के तत्वों के साथ इस तरह से बयान करते हैं–

'बहुत दिन बाद कोयल पास आ कर आज बोली है,
पवन ने आ के धीरे से कली की गांठ खोली है

लगी है कैरियां आमों में, महुओं ने लिए कूचे।
गुलाबों ने कहा हंस के हवा से अब तो होली है,

खिली है आज चंपा कया सुगंध उस ने उठाई है
व' कब तक छिप सकेगी पत्तियों में कैसी भोली है।

कहा लहरों ने तट से तुम बड़े गंभीर हो माना
ये छींटे जो उछलते हैं, क्षमा करना ठिठोली है।'

(गुलाब और बुलबुल, पृ. 88)

पवन का कली की गाँठ खोलना, लहरों का तट से ठिठोली करना यह बड़े ही सुंदर बिंब हैं होली की छेड़छाड़ के। कविता में प्रकृति का इस तरह से जीवंत वर्णन त्रिलोचन की गहन जीवानासक्ति का प्रमाण है। त्रिलोचन प्रकृति के रूप, रस, गंध, स्पर्श को पूरी तन्मयता के साथ प्रकट करते हैं। प्रकृति के मनोहारी सौदर्य को वह प्रसन्न चित्त आंकते हैं। उनकी एक और ग़ज़ल में बसंत का उल्लास देखए जिसमें वह प्रकृति के सौंदर्य का रूप, रस, गंध और स्पर्श के साथ अनुभव करते हैं। पूरी ग़ज़ल इस तरह से है–

'सभी को कोयल पुकार आई
जगत के बन में बहार आई
रखे सजा कर सिंगार कल जो
व आज दुनिया उतार आई
खिली गुलाबों की डालियां हैं
उन्हें मधुश्री दुलार आई
जो मैंने चिंता मनुज की देखी
तो समझा शोभा उधार आई

प्रसून फूले, सुगंध छाई
हवा यह सब से जुहार आई
लजा लजा कर उठी हैं कलियां
उमंग इन को उभार आई
शिशिर का संकोच अब कहां है
बसंत की ऋतु उदार आई
सुनी त्रिलोचन की प्राथना तो
सरस्वती सुख बिसार आई।' (वही, पृ. 126)

यहां बसंत के साथ सरस्वती का उल्लेख कर त्रिलोचन अपने प्रिय कवि निराला की अनुगूंजों को भी उतारते हैं। गौरतलब है निराला के लिए सरस्वती सिर्फ ज्ञान की ही नहीं, वह प्रकृति की, किसान जीवन की श्री ओर समृद्धि की भी प्रतीक है। निराला ने देवी सरस्वती कविता में बसंत के साथ सरस्वती का वर्णन इसी रूप में किया है–

'हरी भरी खेतों की सरस्वती लहराई
मगन किसानों के घर उन्मद बीज बधाई।'[27]

इस तरह त्रिलोचन अपनी इस ग़ज़ल में हिंदी की जातीय परम्परा को आगे बढ़ाने का काम करते हैं।

प्रकृति का हर रंग रूप त्रिलोचन को मोहता है, वह प्रकृति बसंत की हो, आषाढ़ की हो या चैत की। चैत के महीने में प्रकृति का श्रृंगार अपने एक शेर में वह इस तरह से करते हैं–

'चैत के दिन हैं बसी हैं गुलाब की डालें
कैसा आनंद है बुलबुल को, गान गाता है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 125)

किसान जीवन के कवि त्रिलोचन के लिए जैसे बसंत सुंदर है वैसे ही आषाढ़ और वर्षा के दिन भी। गरमी से तपती हुई धरती पर आषाढ़ बरसा की बारात लेकर आती है इसी से खिल उठता है जगत–जीवन। एक ग़ज़ल देखिए–

'धरती खुशी मना तू बरसात आ गई है।
जो बात कल नहीं थी वह बात आ गई है।

तब ताप और कितना भू का अटल रहेगा
आषाढ़ की मनोहर बारात आ गई है।' (वही, पृ. 116)

त्रिलोचन अपने चारों ओर की प्रकृति में ऊर्जा का प्रसार देखते हैं। प्रकृति जीवन में व्याप्त निराशा के कुहासे को छांटती है। सुबह का सूर्य आशा का संदेश लेकर आता है–

'सूर्य उग आया है त्रिलोचन देख
कुछ ही क्षण और यह कुहासा है' (वही, पृ. 117)

त्रिलोचन का कवि आहलाद–उल्लास के लिए प्रकृति का साहचर्य चाहता है। प्राकृतिक जगत् का उल्लास देखकर उनमें नवजीवन के प्रति आशा जागती है। प्रकृति के तत्व दुख से उबरने का संदेश देते हैं। जीवन में कर्म के प्रति उत्साह पैदा करते हैं। जीवन का दुख ताप प्राकृतिक सुषमा हर लेती है–

'आज मधु मास आ रहा है फिर
और पिक गान गा रहा है फिर।

फूल ऋतुराज को मिले, मन भी
नए विश्वास पा रहा है फिर (वही, पृ. 74–75)

प्रकृति से प्रेरणा ग्रहण करते हुए एक शेर में त्रिलोचन जीवन की खुशबू को फूलों सा महकता हुआ देखते हैं'

'गान जीवन का इत्र है अगर जीवन है फूल,
बास में उस की त्रिलोचन को तू बसाए जो।' (वही, पृ. 87)

कोयल की पिक पुकार भला किसे नहीं मोह लेगी। त्रिलोचन कहते हैं जो गम के मारे हैं उन्हें कोयल के बोल सुकुन देगी–

जो तपे हैं, न कहीं जिनके जी को ठंडक है,
बोल कोयल का उन्हें कब नहीं भाया होगा। (वही, पृ. 32)

त्रिलोचन प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हुए, आत्ममुग्ध होकर नहीं रह जाते। वह उसके प्रभाव से सम्पूर्ण मानव जीवन को उल्लसित होता हुआ देखते हैं। उनकी संवेदनाएं मनुष्य के साथ रहती हैं।

'फूल मैत्री के खिले हैं, सुगंध छाई है
आज उल्लास मनुज ने नवीन पाया है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 35)

त्रिलोचन ने प्रकृति को अपनी भावनाओं के रंग में भी रंगकर देखा है। वह प्रकृति के विभिन्न रूपों में झांकते हुए प्रेम संदर्भों को तलाशते हैं। यह संदर्भ वियोग के हों या संयोग के प्रकृति वहां महत्वपूर्ण उपादान बनकर आती है। उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं जिसमें वह अपने टूटे दिल का हाल प्रकृति के माध्यम से कुछ यूं बयान करते हैं–

'जो पतझर के पत्ते सा उड़ता रहा है,
कहे कौन क़िस्मत का मारा नहीं है।

य' आकाश है जिसमें तारे ही तारे,
मगर इसमें मेरा व' तारा नहीं है।' (वही, पृ. 30)

बहुत दिनों के बाद प्रिय का संदेश मिलने पर हृदय कैसे प्रमुदित हो उठता है, जैसे सूनी डाल पर हरियाली आ गयी हो। सूना जी मकरंद पाकर भर जाता है। यहां कवि अपने साथ सारी प्रकृति को भी प्रणय से अनुरंजित देखता है। त्रिलोचन कहते हैं–

'आप से पत्र जो इधर आया,
रंग इस सूनी डाल पर आया।

फूल ने मुंह कहीं निकाला तो,
देखते ही स्वयं भ्रमर आया।' (वही, पृ. 38)

कवि ने प्रकृति के रूपकों का प्रयोग जीवन यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए भी किया है। इस तरह के शेरों में वह एक दार्शनिक की मुद्रा में जीवन का

मर्म बयान करते हैं। कुछ पंक्तियां बड़ी ही काव्यात्मक और प्रभावी बन पड़ी हैं। एक शेर में वह उजाले की चकाचौंध में खोए व्यक्ति को सचेत करते हुए कहते हैं,

न मध्याह्न की चौंध में भूल जाओ,
अंधेरा कहीं छांह में पल रहा है। (वही, पृ. 52)

समय निकल जाने पर अधीर होने से क्या फायदा, जिसे जाना था वह तो जा चुका, जो होना था वह हो गया–

आप पंचम के लिए बरसात में क्यों हैं अधीर
दिन गए वे और कोकिल गान अपने गा चुका।' (वही, पृ. 62)

इस तरह ग़ज़ल में प्रकृति के कई रंग बिखेर कर त्रिलोचन ने उसे समृद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य किया है।

गुलाब और बुलबुल की रुबाइयां

त्रिलोचन के यहां काव्य रूपों की कमी नहीं है। उन्होंने गीत, कुंडलियां, बरवै, सॉनेट, छोटी और लम्बी कविताएं, ग़ज़लों के अलावा रुबाइयां भी लिखी हैं। उनके गुलाब और बुलबुल संकलन में 101 रुबाइयां भी संकलित हैं जिसे त्रिलोचन जी ने चतुष्पदियां कहा है। रुबाई शायरी की एक खास किस्म है। "चार मिसरों (पंक्तियों) की मुक्तक रचना को रुबाई कहते हैं। इसमें पहले, दूसरे और चौथे मिसरे का रदीफ और काफिया एक ही होता है–

दर पर मजलूम इक पड़ा रोता है
बेचारा बला में मुब्तला होता है
कहता है वो शोख ताल सम ठीक नहीं
कया उसकी सुनूं कि बेसुरा रोता है।

– अकबर इलाहाबादी

इसके पहले मिसरे में विषय को उठाया जाता है दूसरे–तीसरे में उसे विस्तार दिया जाता है और चौथे में नाटकीय ढंग से किन्तु मार्मिकता के साथ उस विषय के सारतत्व को इस तरह प्रस्तुत कर दिया जाता हे कि रुबाई के चारों

मिसरे एक साथ झंकृत होकर तात्पर्य को सघन कर देते हैं। इस तरह के अर्थ–घनत्व के कारण ही रुबाई काफी लोकप्रिय रही है।'[28]

रुबाई अरबी भाषा का शब्द है और फारसी भाषा का एक बहुत ही लोकप्रिय छंद है। "रुबाई, अरबी के शब्द 'रबअ' पर आधारित है। रबअ का अर्थ किसी वस्तु का चौथा भाग होता है और रुबाई का अर्थ चार वाला है। इसलिए चार मिसरों वाली नज्म को रुबाई कहते हैं।"[29]

रुबाई के स्वरूप को और स्पष्ट करते हुए शिव शंकर मिश्र लिखते हैं– "अक्सर मेरे मन में रुबाई का जो चित्र उभरता है, वह दो दोस्तों का है, जो उसकी पहली दो पंक्तियों की तरह एक–दूसरे से हाथ मिलाते हैं। फिर तीसरी पंक्ति की जगह सम्मिलित का एक कदम लेकर चौथी में गले लग जाते हैं। कम–से–कम में कहने की यही कला रुबाई की कला है जिसमें एक साथ अनुभव का आत्मीय स्पर्श, शब्द का रोमांच और एकत्र होने की खुली आपसदारी है।"[30]

रुबाई के और भी कई नाम प्रचलित हैं। "इसे तराना, दोबैती, चहारबैती, खस्सी, मिसाई तथा जफ्ती आदि विभिन्न नामों से याद किया गया है। फारसी की प्राचीन पुस्तकों में रुबाई को तराना कहा गया है। कालांतर में चहारबैती कहा जाने लगा।"[31]

'रुबाई' मूलतः फारसी की लोकप्रिय काव्य विधा है। उमर खैयाम और हाफिज ने इस में प्रभूत ख्याति अर्जित की और उन्हीं से उर्दू में भी इसका आगमन हुआ। उर्दू के लगभग सभी शायरों ने रुबाइयां लिखी हैं। कुछ ने इस क्षेत्र में विशिष्टता भी हासिल की है जैसे अनीस लखनवी, शाद अजीमाबादी, जोश मलीहाबादी, फिराक गोरखपुरी आदि।"[32] फिराक एक रुबाई प्रस्तुत है जिसमें कम से कम शब्दों में उनकी सौंदर्य कल्पना की मार्मिक प्रस्तुति प्रभावित करती है–

'लहों में लिखा कमल नहाये जैसे
दोशीजये– सुबह गुन गुनाये जैसे
ये कोमल रूप का सुहानापन
बच्चा सोते में मुस्कराये जैसे'[33]

"हिंदी के लोकप्रिय कवि बच्चन ने उमर खैयाम की मधुशाला को प्रस्तुत करने के बाद हिंदी में अपनी 'मधुशाला' लिखी और लोकप्रियता प्राप्त करने के साथ ही हिंदी में 'हालावाद' के नाम से एक मस्तीवाली काव्य धारा प्रवाहित कर दी।"[34] बच्चन की रुबाइयों के बाद हिंदी में रुबाई का दौर चल पड़ा। शमशेर, त्रिलोचन, नीरज, दुष्यंत कुमार, शेरजंग गर्ग, बलवीर सिंह रंग, कुंअर बेचैन आदि की रुबाइयां प्रसिद्ध हुई।

"रुबाई में विषय की कोई सीमा नहीं है। यह किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। इसमें केवल भावों की परिपूर्णता और उसकी सघन अभिव्यक्ति ही महत्वपूर्ण है।"[35] मजहर इमाम के अनुसार– "रुबाई में आम तौर से एखलाकी और फल्सफियाना मुजामी शामिल किये जाते हैं। सूफी शायरों ने बतौर खास इस शिन्फ (विधा) को अपनाया है। उमर खैयाम की जिन निशतियां, रुबाइयों की चर्चा है, उन पर भी तसउफ्फ का असर नुमायां है।"[36] रुबाइयों की विषय वस्तु दुनिया जहान के तमाम सारे मसलों को लेकर चलती है। उसमें प्रेम और श्रृंगार के अलावा जिंदगी की फिलासॉफी भी है। इस बारे में शिव शंकर मिश्र लिखते हैं– "निश्चित रूप से, रुबाई कविता की एक बहुत ही अकृत्रिम और जीवंत परंपरा है। वह महबूब का हुस्न बयान करने का ही माध्यम नहीं, न ही वह महबूब की भवों और भींगी हुई मसों की मानिंद है सिर्फ। रुबाई जिंदगी की तर्जुमानी भी करती है; जिंदगी और अपने दौर के संघर्षों और संकटों से भी खुलके आमने–सामने होती है।"[37]

त्रिलोचन की रुबाइयों में जिंदगी का अनुभव सूक्ति के रूप में ढलकर प्रस्तुत हुआ है। जिसमें त्रिलोचन किसी यथार्थ दृष्टा की तरह जिंदगी के तमाम सारे पहलुओं पर अपनी बात कहते हैं। सुरेन्द्र प्रसाद के अनुसार "त्रिलोचन की रुबाइयों में प्यार मुहब्बत की बात बहुत कम की गई है और दूसरे ढंग की ऐसी बातें हुई हैं जो बहुत सूक्ष्म और निगूढ़ सत्य को उद्घाटित करने वाली हैं।"[38] मजहर इमाम भी लिखते हैं– "त्रिलोचन शास्त्री की रुबाइयों (या कतों) को पढ़ने के बाद, उनके प्रगतिशील रुझानात का पता चलता है। अपने वतन और अपनी धरती से मोहब्बत और इसके लिए कुर्बानी देने का हौंसला पाया जाता है। उन्होंने

मर्द और औरत की बराबरी और उनके साथ–साथ काम करने की भी हिमायत की है।"[39]

त्रिलोचन के ग़ज़लों में जहां आपबीती और वेदना की प्रमुखता है वहीं रुबाइयों में प्रगतिशील त्रिलोचन मुखर हुए हैं। जीवन और प्रकृति के प्रति उनके नजरिए ने संजीदगी और गम्भीरता मिलती है। राजनीतिक संदर्भों में भी उनकी कई रुबाइयां देखने को मिलती हैं। व्यंग्य के द्वारा वह राजनीति के विद्रूप को चित्रित करते हैं। चन्द्रबली सिंह के अनुसार "गुलाब और बुलबुल' की रुबाइयों में त्रिलोचन की कविता में एक नया तत्व भी आया है। वह उनका व्यंग्य है। त्रिलोचन के व्यंग्य में विद्रूप की जगह संयम और गहरी चोट करने की जगह नोक चुभाने की प्रवृत्ति है।"[40] उदाहरणार्थ–

आप देखेंगे सिर धुनेंगे अब
सोचकर कोई पथ चुनेंगे अब
वे समाजवाद के नशे में हैं
आपकी बात क्या सुनेंगे अब। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 145)

अवसरवादी नेताओं पर उनकी यह टिप्पणी बहुत नपे–तुले शब्दों में ही सही पर उन पर दूर तक मार करने वाली है। डॉ. सुरेश गौतम इसी संदर्भ में लिखते हैं– "प्रहारात्मक व्यंग्य चित्रों से सज्जित अपनी इस कृति में कवि ने राजनीतिक व्यंग्यों को अत्यधिक पैना और तीखा किया है। पंचतंत्र की कथाओं को नए संदर्भों में प्रस्तुत कर राज्य में सम्मानित व्यक्तियों पर धारदार व्यंग्य द्रष्टव्य है।"[41]

पद्मविभूषण जो हंसे हंसते रहे
हम जो लहरों में फंसे फंसते रहे
बाघ बूढ़ा व कड़ा सोने का
लोग दलदल में फंसे फंसते रहें। (वही, पृ. 137)

इन रुबाइयों में सामयिक घटनाओं पर भी कवि का ध्यान गया है। देश में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार और खोखली न्याय प्रणाली की पोल खोलते हुए एक रुबाई में त्रिलोचन कहते हैं–

'वह जो इंदौर में चली गोली
जांज उस की अदालती होली
बदली कर दी वहां जो अफ़सर थे
न्याय की क्या नई प्रथा खोली' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 144)

भ्रष्टाचार का विकराल रूप तो दैवीय आपदाओं में दिखता है। यह आपदाएं जहां आम आदमी के लिए तबाही लेकर आती हैं वही कुछ लोगों की इससे चांदी कटती है। इस तरह के लोगों की मानसिकता पर त्रिलोचन कटु व्यंग्य करते हैं। बाढ़ के बहाने अपनी रोटी सेंकने वाले एक सज्जन की खबर त्रिलोचन इस तरह लेते हैं–

झूरी बोला कि बाढ़ क्यों आई
लीलने अन्न को सुरसा आई
अब की श्रीनाथ तिवारी का घर
पक्का बन जाने की सुविधा आई। (वही, पृ. 138)

त्रिलोचन ने इन रुबाइयों में स्त्री अधिकारों की बात भी उठाई है। वह नर–नारी की बराबरी की बात करते हैं। उनके अनुसार स्त्री सिर्फ घर में ही पुरुष की सहचरी नहीं है वह राष्ट्र और समाज के निर्माण में भी पुरुष के साथ सक्रिय भागीदारी निभाती है और उसे ऐसा करने की आजादी भी मिलनी चाहिए–

नर जो संसार में भटकता है
इस जगह उस जगह अटकता है।
कैसे नारी घिरी रहे घर में
उस का उद्योग क्यों खटकता है (वही, पृ. 138)

साथ निकलेंगे आज नर नारी
लेंगें कांटो का ताज नर नारी
दोनों संगी है और सहचर हैं
अब रचेंगे समाज नर नारी (वही, पृ. 138)

त्रिलोचन की कविता करुणा एवं संवेदना से अभिभूत है। उनकी रुबाइयों में भी एक संवेदनशील कवि अभिव्यक्त हुआ है। दुखी जनों के लिए अपनी प्रतिबद्धता जताते हुए एक रुबाई में कहते हैं–

'सोच में रात भर जगा हूं मैं
खोज में शांति की लगा हूं मैं
जो थके हैं, गिरे हैं, हारे हैं
उन का आत्मीय हूं सगा हूं मैं' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 134)

त्रिलोचन की कविता में दुःख और निराशा के घटाटोप अंधेरे में उम्मीदों की किरणें भी दिखती हैं। वह कहते हैं कि माना जिंदगी में गम ही गम हैं पर उम्मीद करता हूं सुख के दिन जरूर आयेंगे। जीवन के प्रति उनका गहरा प्रेम ही गहन निराशा के क्षणों में भी उनके इस तरह की पंक्तियां रचाता है–

'आजकल जी उदास रहता है
चोंटे आती हैं और सहता है।
कल इस से अच्छा दिन आएगा
आज की लहरों से कहता है।' (वही, पृ. 134)

जीवन और प्रकृति का सहज उल्लास उनकी रुबाइयों में देखा जा सकता है। प्रकृति के सौंदर्य को निहारते हुए वह उससे मिलने वाली जीवन–ऊर्जा को रेखांकित करते हैं। गौरेया के चहचहाने में उनके लिए जीवन का गीत भरा हुआ है। वह उसके गान से पुलकित हो कहते हैं–

'खिड़की पे जो गौरेया चहचहाती है
जीवन के गान अपने वह सुनाती है
जाने कहां कहां से दिन में जा जा कर
प्राणों की लहर पंखों में भर लाती है।' (वही, पृ. 146)

त्रिलोचन के बारे में परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है– 'त्रिलोचन खास अर्थ में जीवन संदेश के कवि हैं। वे प्रकृति प्रेम, सौंदर्य और जीवन की तमाम गतिविधियों को शब्द देते हुए एक कोई पते की बात जरूर कहते हैं जिसे संदेश

कहा जा सके। यह संदेश सूक्ति में ढला हुआ, पर अधिक अर्थमय होता है।'[41] यही बात उनकी रुबाइयों के विषय में भी कही जा सकती है। उनकी हर रुबाई एक संदेश लिए हुए है। प्रकृति के माध्यम से वह दुःख से उबरने का संदेश एक रुबाई में बड़े ही सुंदर ढंग से देते हैं। कवि की सूक्ष्म दृष्टि फूलों को हंसते हुए देखती है–

'हमने देखा कि फूल हंसते थे
डाल पर झूल झूल हंसते थे
पूछा कल की भी कुछ खबर है क्या
बात सब भूल–भूल हंसते थे।' (वही, पृ. 135)

कवि फूलों को हंसते देख पूछता है कि कल तुम्हें माली तोड़ ले जायेगा कुछ इसकी भी चिंता है क्या तुम्हें? जवाब में वह पाता है कि फूल वर्तमान जीवन के उल्लास में आने वाले कल के दुख को भूलकर निडर हो हंसते हैं। फूलों की हंसी के बहाने त्रिलोचन जीवन के हर क्षण को उल्लास से जीने की ओर इशारा करते हैं।

त्रिलोचन कहते हैं कि इस दुनिया में कुछ भी स्थायी नहीं। दुःख हो या सुख सभी आते जाते रहते हैं। परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है। इसलिए जाने वाले के लिए दुःखी होने से क्या फायदा? यह दुनिया तो एक सराय की तरह है इसमें रहने वाले मेहमान हैं जो कुछ दिनों के लिए यहां आये हैं। एक जाएगा फिर दूसरा आयेगा–

'कोई आंसू यहां दिखाता है
कोई दिन चैन से बिताता है।
सच है, दुनिया सरायफानी है
एक जाता है एक आता है।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 132)

उत्थान और पतन का क्रम सृष्टि में बराबर चलता रहता है। इसी में जीवन का रहस्य छिपा हुआ है। अंधेरे के दूसरे छोर से रोशनी शुरू होती है। मृत्यु जीवन की पीठिका है। भीषण गर्मी के बाद ही बरसा होती है। क़यामत के बाद ही

जिंदगी करवट लेती है इसे इस संसार का सच मानकर गमों को भुला देना चाहिए–

'सत्य यह बात दृष्टि आती है
प्रलय के बाद सृष्टि आती है।
हम ने देखा है बराबर जग में
ग्रीष्म के बाद वृष्टि आती है।' (वही, पृ. 147)

त्रिलोचन ने जीवन को बहुत गहरे तक धंस कर देखा है। उनमें आवेगों को लेकर उतावलापन नहीं है। जीवन का गहरा अनुभव, देश–दुनिया की समझ ने उनकी दृष्टि में उन्मेष पैदा किया है। इसीलिए उनके भीतर एक तरह की सहजता मिलती है। जिसका प्रभाव उनकी कविता पर भी दिखता है। भीतर से जैसे भाव निकलते हैं वही सजह शब्दों में ढलकर कविता बन जाती है। और उनके शब्द भी इसी लौकिक जीवन के, उसकी जीवंतता को अर्थवान करते हुए। इसी संदर्भ में राम मूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं– "त्रिलोचन जी की मान्यता है कि कविता एक अनायत्त मानसिक लहर की परिणति है। उस लहर पर रचयिता व्यक्ति का कोई अधिकार नहीं है। वह लहर अनुरूप भाषा में परिणत हो जाती है। जैसे सहज भाव वैसी ही नपे–तुले कसाव की सहज बोध गम्य भाषा। इससे स्पष्ट है कि उनमें कोई ग्रंथि नहीं है कि पाठकों पर आतंक जमाया जाय।"[43] उन्होंने कहा है–

'जब लहर आई तो मैंने गाया
जी का व्यवसाय बस यही पाया
शब्द और अर्थ ये जगत के ही
भाव अपने उन्हीं में भर लाया।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 147)

कुछ रुबाइयां प्रेम पर भी हैं। प्रेम मनुष्य के जीवन में सर्वोपरि स्थान रखता है। वह उसकी जरूरत है। जिसे सच्चा प्रेम मिल गया वह संसार की अमूल्य निधि पा गया। त्रिलोचन 'प्रेम' को आत्मा को मिला दिव्य उपहार कहते हैं–

'प्यार सा प्यार दिया है तुमने
ऐसा उपहार दिया है तुमने।

भूख आत्मा की मिटाने के लिए
दिव्य उपहार दिया है तुमने।' (वही, पृ. 139)

प्रेम पर लिखी एक अन्य रुबाई में संयोग का एक खूबसूरत दृश्य यूं उपस्थित किया है–

'फूल खिलते हैं खिला करते हैं
हवा आई तो हिला करते हैं
कहते हैं लो महक तुम्हारी है
हम यही ले के मिला करते हैं।' (वही, पृ. 140)

त्रिलोचन की रुबाइयों पर लिखते हुए मजहर इमाम ने लिखा है कि आमतौर पर रुबाइयों की विषयवस्तु गंभीरता और संजीदगी लिए होती है जबकि – "त्रिलोचन शास्त्री के यहां ऐसी गंभीर और संजीदा शिन्फ कहीं कहीं चुटकुलों में बदल जाती है। जैसे–

'मंत्र मैंने लिया है तो अपना
हृदय भी यदि दिया है अपना
दूसरे किसलिए करें चिंता
बुरा मैंने किया है तो अपना।' (वही, पृ. 131)

...ऐसा नहीं कि, तंजिया या मुजाहियां रुबाइयां न कही जाती हों। लेकिन, रुबाइयों में तंज के बावजूद एक रकाब और संजीदगी होती है, एक तरह की गंभीरता होती है। मगर, त्रिलोचन शास्त्री के यहां इस गंभीरता की कमी महसूस होती है, जो अच्छी शायरी के लिए जरूरी है।"[44] इस बारे में इतना ही कहना है कि इस तरह की रुबाहयों में त्रिलोचन एक बेफिक्र और फक्कड़ शायर के मूड में नजर आते हैं जो उन्हें जीवन में मिली उपेक्षा और चुनौतियों का परिणाम है। यहां उनमें किसी तरह की दर्पोक्ति की जगह उस समाज से उदासीनता की भावना है जिसने उन्हें उपेक्षित रखा। वैसे इस तरह की रुबाइयां एक–दो जगह ही मिलती हैं। बाकी रुबाइयों में ताप के ताए हुए दिनों से निकला अनुभव जिंदगी के फलसफों को बयान करता है। चार पंक्तियों में ही कथ्य को समेट देने की बंदिश

वाली इस विधा में त्रिलोचन ने अपूर्व सफलता पाई है। इनके रुबाइयों की अर्थव्यंजकता प्रभावित करती है। वह चाहे प्रकृति पर लिख रहे हों या जिंदगी की तल्ख सच्चाइयों पर। उसमें निहित व्यंजना चमत्कृत करती है जैसा कि एक रुबाई में कहते हैं– समाज में जो वंचित है उनके लिए समृद्धि, सभ्यता किस चिड़िया का नाम है, वह जान ही नहीं पाते क्योंकि सभ्यता का साज तो दूसरे रास्ते से निकल जाता है–

'सभ्यता का जुलुस जब निकला
हमने जाना ही नहीं कब निकला
राम दीन् भी थक गए आखिर
दूसरे पथ से सजा सब निकला।' (गुलाब और बुलबुल, पृ. 137)

त्रिलोचन की रुबाइयां विषय वस्तु की विविधता एवं अर्थव्यंजना की दृष्टि से हिंदी की रुबाइयों में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। शिवशंकर मिश्र के शब्दों में "त्रिलोचन ने तो काफी रुबाइयां लिखी हैं और बच्चन के बाद वह दूसरे सर्वाधिक प्रमुख रुबाईकार ठहरते हैं।"[45] हिंदी में रुबाई को लोकप्रिय बनाने की दृष्टि से भी त्रिलोचन महत्वपूर्ण रहेंगे।

संदर्भ

1. त्रिलोचन की कविता यात्रा, जीवन प्रकाश जोशी, संधान प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1983, पृ. 13।
2. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 71।
3. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985 के फ्लैप से उद्धृत।
4. शब्द जहां सक्रिय है, नंद किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 1986, पृ. 52।
5. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, से उद्धृत।
6. शब्द जहां सक्रिय है, नंद किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 1986, पृ. 52–53।
7. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 22।
8. हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, डा. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, सं. 2007, पृ. 94।
9. वही, पृ. 93।
10. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेश, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं. 2006, पृ. 60 से उद्धृत।
11. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 71।
12. वही, पृ. 13।
13. वही, पृ. 71।
14. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1993, पृ. 40।
15. अन्तर्गवाक्ष, प्रगतिवादी काव्य पुनर्मूल्यांकन, डा. सुरेश गौतम, आलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1997, पृ. 77।
16. हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, डा. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, सं. 2007, पृ. 100।
17. कवितावली, तुलसी ग्रंथावली द्वितीय खंड, सं. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, सं. 2031, पृ. 185।

18. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 11।

19. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 1993, पृ. 74।

20. शब्द जहां सक्रिय है, नंद किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 1986, पृ. 51।

21. हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, डा. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, सं. 2007, पृ. 58।

22. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 156।

23. उर्दू कविता का विकास, डॉ. कृष्ण चन्द्र लाल, भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद, सं. 1995, पृ. 61।

24. शब्द जहां सक्रिय है, नंद किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, सं. 1986, पृ. 56।

25. सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अं–38, जुलाई–दिसम्बर, 1997, दुर्ग, (म.प्र.), पृ. 583 से उद्धृत।

26. अन्तर्गवाक्ष, प्रगतिवादी काव्य पुनर्मूल्यांकन, डा. सुरेश गौतम, आलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1997, पृ. 78।

27. नए पत्ते, निराला, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1985, पृ. 70।

28. उर्दू कविता का विकास, डॉ. कृष्ण चन्द्र लाल, भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद, सं. 1995, पृ. 211।

29. दक्खिनी हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. परमानंद पांचाल, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1986, पृ. 171।

30. पुरुष, 21, 22वां अंक अप्रैल 1995, पृ. 97।

31. दक्खिनी हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. परमानंद पांचाल, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1986, पृ. 171।

32. उर्दू कविता का विकास, डॉ. कृष्ण चन्द्र लाल, भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद, सं. 1995, पृ. 211–212।

33. वही, पृ. 211।

34. वही, पृ. 211।

35. वही, पृ. 212।

36. सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अं–38, जुलाई–दिसम्बर, 1997, दुर्ग, (म.प्र.), पृ. 505 से उद्धृत।

37. पुरुष, 21, 22वां अंक अप्रैल 1995, पृ. 95।

38. हिंदी की प्रगतिवादी कविता, डॉ. सुरेन्द्र प्रसाद, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, सं. 1985, पृ. 117।

39. सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अं–38, जुलाई–दिसम्बर, 1997, दुर्ग, (म.प्र.), पृ. 506 से उद्धृत।

40. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 72।

41. अन्तर्गवाक्ष, प्रगतिवादी काव्य पुनर्मूल्यांकन, डा. सुरेश गौतम, आलोक प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1997, पृ. 77।

42. त्रिलोचन के बारे में, सं– गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं 1994, पृ. 204।

43. सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अं–38, जुलाई–दिसम्बर, 1997, दुर्ग, (म.प्र.), पृ. 144 से उद्धृत।

44. वही, पृ. 506 से उद्धृत।

45. पुरुष, 21, 22वां अंक अप्रैल 1995, पृ. 97।

अध्याय : चार

गुलाब और बुलबुल का शिल्प

गुलाब और बुलबुल का शिल्प

ग़ज़ल को शायरी के अन्य रूपों की तुलना में महत्वपूर्ण और लोकप्रिय बनाने वाला तत्व उसका शिल्प ही है। इसके शिल्प में कोमलकांत पदावली, शब्दों की नफ़ासत, अर्थ सघनता और गेयता आदि का होना इसकी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनसें ग़ज़ल हर किसी को अच्छी लगने लगती है। लेकिन जब हम त्रिलोचन की ग़ज़लों को इस कसौटी पर परखते हैं तो उनमें वह बात नहीं नजर आती। उनकी भाषा में लोच और रवानी का अभाव है। शब्द रूखे और खुरदुरे हैं। उनमें उर्दू–फारसी शायरी के वह श्रृंगारी बिंब और प्रतीक नहीं मिलते जो ग़ज़ल की पहचान हुआ करते हैं। उनकी शायरी में रुमान की जगह सादगी और खरापन मिलता है। उनमें वह अंदाज़ेबयां भी नहीं है जो पारंपरिक ग़ज़लियत में प्राप्त होता है। त्रिलोचन के ग़ज़लों के शिल्प के संबंध में डा. नरेश कहते हैं– "त्रिलोचन की ग़ज़लों में भाषा का लोच अनुपस्थित रहा तथा उनके शेर सपाट बयानी बन गए।"[1] कुछ इसी तरह ज्ञानप्रकाश विवेक की भी मान्यता है– "उनकी ग़ज़लों में शिल्पगत उत्कृष्टता ढूंढना बेमानी होगा। वहां सादगी और खरापन है।"[2]

अब यहां पर एक प्रश्न उठता है कि जो कवि अपनी कविताओं की भाषा में लोच और सरलता को महत्व देता है उसकी ग़ज़लों की भाषा में इतनी दुरूहता और ऊबड़–खाबड़पन क्यों है? जबकि स्वयं त्रिलोचन उर्दू ग़ज़लों की भाषा के संदर्भ में कहते हैं– "उर्दू ग़ज़लों में जो भाषा आती है वह बोलचाल का वह लहजा पकड़ती है जिससे कविता में जीवनतत्व आता है। हिंदी में लिखने वाले बोलचाल का सौंदर्य देख ही नहीं पाते। हिंदी का वातावरण अलग है। उसको रूपायित करने के लिए वाक्यों में लोच की जरूरत है और इस लोच को लाने में बड़ी मशक्कत है।"[3] जाहिर है कि त्रिलोचन उर्दू ग़ज़लों की भाषा के मिज़ाज से परिचित हैं और हिंदी ग़ज़लों में भी भाषा की वही खूबी देखना चाहते हैं। यहां त्रिलोचन ने भाषा में जिस लोच की बात कही है वह लोच और बोलचाल का लहजा हमें उनके समकालीन शमशेर और दुष्यंत की ग़ज़लों में एक हद तक दिखाई देता है। पर यही लहजा त्रिलोचन की ग़ज़लों में अनुपस्थित है। इसके कारणों की तफसील में

जाने पर यह बात उभरकर सामने आती है कि त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लें हिंदी की जातीय परम्परा में लिखी हैं। उनमें हिंदी का संस्कार हावी है। शब्द चयन से लेकर मुहावरों के प्रयोग आदि तक उनका झुकाव हिंदी परम्परा की ओर रहा है। यूं कह सकते हैं कि उनकी ग़ज़लों की भाषा ठेठ हिंदी के रंग को पकड़ती है। वह अपनी ग़ज़लों को हिंदी के स्वभाव में ढालते हैं। हिंदी परम्परा के प्रतीक, बिंब और मुहावरे उसमें रूपायित हुए हैं। उर्दू–फारसी के शब्दों और प्रतीकों से बचना चाहा है। इसी के साथ यह बात दीगर है कि उनकी ग़ज़लें हिंदी ग़ज़लों की आरम्भिक युग की ग़ज़लें हैं, जब हिंदी ग़ज़ल अपने लिए नई भाषा तलाश रही थी। त्रिलोचन में उर्दू ग़ज़लों से भिन्न हिंदी ग़ज़लों के शिल्प को नयी भंगिमा देने का प्रयास दिखता है। इस बारे में राजू.एम. फिलीप का कथन समीचीन है– "गुलाब और बुलबुल में त्रिलोचन शास्त्री ने रूबाइयों एवं ग़ज़लों जैसे गैर हिंदी क्लासिकीय काव्यरूपों को अपनाया है। अपने आप में यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। साथ–ही–साथ उन्होंने कई मौलिक प्रयोग भी किए हैं। एक ओर उन्होंने रुबाई और ग़ज़ल के अनुरूप अपनी लेखन शैली को ढाल दिया, वहां दूरी ओर इन काव्यरूपों को हिंदी जगत की भावभूमि के अनुकूल बनाने की दिशा में प्रयोग भी किए हैं।"[4]

त्रिलोचन ने भाषा में यह प्रयोग शब्दों के चयन में तो किया ही है वाक्य विन्यास और छंद में भी नई राह पर चले हैं। पारंपरिक ग़ज़लों में शब्द नफासत से भरे मिलते हैं। त्रिलोचन के ग़ज़लों की भाषा में खुरदुरापन है। वाक्यों का गठन ठीला पड़ गया है। लय बार–बार टूट जाती है। ऐसा लगता है कि यथार्थ जीवन का तनाव उसमें दरार पैदा कर रहा है। दरअसल त्रिलोचन किसान जीवन के कवि हैं। जिसमें अभाव और संघर्ष का लम्बा सिलसिला चलता है। उनके शब्दों का स्रोत यही किसान जीवन है। किसान जीवन का कवि शोख और नाजुक शब्दों को कहां से लाकर अपनी कविता में थोपे। उसके पास तो ताप के ताए हुए दिनों के शब्द हैं। जीवन के संघर्षों से भरे हुए ऊर्जावान और क्रियाशील। इसीलिए उनकी भाषा में रूमानियत की जगह सादगी का सौंदर्य मिलता है।

उनके शब्दों में नैतिक सच्चाई से अनुप्रेरित उष्मा मिलती है। श्रम और संघर्ष के प्रति आग्रह भाषा में खरापन लाता है। यहां भाषा में ठहराव नहीं क्रियाशीलता मिलती है। उसमें आवेग की जगह संयम है। रुदन की जगह भीतर ही भीतर कसकता हुआ दर्द है जो उनके शेरों में झलकता है।

त्रिलोचन की भाषा में ओज और औदात्य देखना हो तो नसीहत की शायरी को देखिए यहां पर उनकी भाषा परंपरागत शायरी की नाजुकी और रवायत को तोड़कर एक नई भंगिमा अपनाती है। कुछ शेर उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत हैं–

यत्न कर यत्न, यों पूजा पै बैठ जाने से
संकट आए हैं, नहीं इससे टला है कोई। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 57)

महत्प्रेम को जो महासौध है
रहेगा, रहेगा, न ढह पायगा। (वही, पृ. 27)

त्रिलोचन की शायरी नैतिकता, यथार्थ और संघर्ष की बातें करते हुए संस्कृत के तत्सम शब्दों की ओर रुख करती है, जैसे कि आम बोलचाल के शब्द उस संवेदना को अभिव्यक्त कर पाने में असमर्थ हों। यहां वह दो शब्द के बीच तनाव पैदा करते हैं। यह तनाव कभी–कभी पूरे शेर के लय को तोड़ देता है। देखए–

प्रशंसा परार्थानुसंधान की है
कहां स्वार्थ का रंग गहरा न देखा। (वही, पृ. 59)

मिलने को था अमृत किसी के प्राण के बदले
सब थे प्रपित्सु प्राण का दानी वहां न था। (वही, पृ. 25)

इसके अलावा भी उन्होंने अपनी ग़ज़लों में संस्कृत के बहुत से कठिन शब्दों जैसे– समुन्नति, वज्राघात, अंतर्यामी, सुदृढ़ स्तंभ, आतिथ्य, पविपात, उत्तुंग, ऊर्मिश्रृंग का प्रयोग किया है। इस तरह के शब्द प्रयोग ग़ज़ल जैसी नाजुक विधा को बोझिल और नीरस बनाते हैं। त्रिलोचन अगर इनकी जगह हिंदी उर्दू के सामान्य बोलचाल के शब्दों को रखते तो शायद वह अपनी भावनाओं को और बेहतर संप्रेषित कर पाते। उनकी इस कमजोरी पर जीवन प्रकाश जोशी ने लिखा है –

"संस्कृत के कठिन पद शायरी के जिस्म पर जगह–जगह मस्सों से दिखलाई पड़ते हैं।"[5]

त्रिलोचन ने जिन शेरों में हिंदी के आम बोलचाल के शब्दों को रखा है वहां भाषा में लोच दिखाई देता है। वह पढ़ने और सुनने में भी अच्छे लगते हैं। उनके गजलों में बहुत से ऐसे शेर है जहां छोटे और सरल शब्दों का प्रयोग किया है। जैसे– भाषा में सरलता है।

यह भी जीने की एक सूरत है
मन के मंदिर में उन की मूरत है। (वही, पृ. 48)

अब तो जैसी भी आए सहना है
दिल से आवाज़ ऐसी आई है। (वही, पृ. 28)

इन शेरों में सूरत, मूरत, दिल और सहना जैसे शब्द छोटे और सरल भी हैं पढ़ने–सुनने में भी अच्छे लगते हैं। त्रिलोचन ने कहीं कही देशज शब्दों का प्रयोग भी किया है। जैसे– लाग, बिपत, फिरत, खरमिटाव, घाम, नेम आदि इससे भाषा में स्वाभाविकता आ गई है।

त्रिलोचन के शेरों में उर्दू–फारसी के शब्दों का भी प्रयोग है। उन्होंने उर्दू–फारसी के उन्हीं शब्दों को चुना है जो आम बातचीत में प्रयोग किये जाते हैं। हालांकि इस तरह के शब्द उनकी शायरी में बहुत कम ही आए है पर जहां भी उन्होंने इन शब्दों का प्रयोग किया है भाषा में रवानी आ गई है। उर्दू शब्दावली से भरे कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

देख लेता हूं सुबहो शाम की मैं रंगीनी
रंग मेरे ही लिए सुबह नहीं शाम नहीं। (वही, पृ. 61)

गुल गया, गुलशन गया, बुलबुल गया, फिर क्या रहा
पूछते हैं अब व ठहरा किस जगह सैयाद था। (वही, पृ. 24)

जो मौजों को देखा तो जी ही न माना
य' मालूम था यह किनारा नहीं है। (वही, पृ. 30)

त्रिलोचन ने अपनी ज्यादातर ग़ज़लें अभिधात्मक शैली में लिखी हैं। इन ग़ज़लों का वाक्य विन्यास बहुत शिथिल है। उनमें सपाट बयानी झलकती है। शेरों में अर्थ घनत्व, चारुता का अभाव है। कई बार तो ऐसा लगता है वह शायरी की जगह गद्य कह रहे हों। एक शेर में देखिए–

तुम्हें मैंने बुलाया था बुलाकर कह सुनाया था
जो धीरज देखना चाहो तो तुम पविवात में आओ। (वही, पृ. 53)

कहीं कहीं वाक्य बहुत लम्बे हो गये हैं जो ऊब पैदा करते हैं। उनकी लय टूटी हुई लगती है। सरल शब्दों के बीच में अचानक से किसी भारी भरकम शब्द का प्रयोग वाक्य की लय को बिगाड़ देता है। इसी तरह उनके शेर के दोनों मिसरे भी कहीं कहीं अलग काल में हैं। उनका एक शेर है–

दर्द आवाज में थिरकता है
ऐसे में कैसे स्वर उठाता तू (वही, पृ. 83)

यहा पहला मिसरा वर्तमान काल में चल रहा है। वह कहते हैं कि अभी आवाज में दर्द है। फिर अगली पंक्ति को वह भूतकाल में ले जा रहे हैं कि 'ऐसे में तू कैसे गा सकता था'। जब दर्द अभी उठा है तो वह पहले के समय में 'न' गा सकने की बात क्यों कह रहे हैं? इस तरह यहां दोनों मिसरों का तारतम्य बिगड़ गया है। वाक्य की यह शिथिलता उसकी गेयता में अवरोध बन गया है। अच्छे भाव होने के बाद भी शेर नीरस लगने लगते हैं। त्रिलोचन ने जहां भावों के अनुकूल शब्दों का चयन किया है। वहां शेरों में स्वाभाविकता आ गई है। उनके बहुत से मिसरे गेयात्मक बन पड़े हैं। वाक्य छोटे हो या लम्बे, भावानुकूल शब्दों के चयन और उनके सही विन्यास से वह अच्छे लगते हैं। लम्बे वाक्य का उनका एक शेर है–

जानता है तू त्रिलोचन क्या फकीरी रंग है,
क्यों नगर में घूमता हूं क्यों सदा देता हूं मैं। (वही, पृ. 51)

यहां शब्दों के उचित चयन ने शेर की मार्मिकता को बढ़ा दिया है। त्रिलोचन की भाषा में सपाटबयानी से मुक्ति भी है। जब उनकी भाषा में तड़प और

टीस होती है तो उसका रंग देखने लायक होता है। भीतर के दर्द को जब वह अपने शेरों में पूरी तन्मयता से ढालते हैं तो इस तरह के स्वर निकलते हैं–

चुप क्यों न रहूं हाल सुनाऊं कहां कहां
जा जा के चोट अपनी दिखाऊं कहां कहां।
क्या गम जो स्वर उठे तो कहीं जा के रहेंगे
इस दर्द की लहर को छिपाऊं कहां कहां। (वही, पृ. 60)

इस शेर में उनके स्वर की आर्द्रता और तरलता बरबस ही अपनी ओर ध्यान खींच लेती है। 'कहां–कहां' की आवृत्ति में कातरता और लाचारी का जो भाव छिपा है वह दूर तक असर करता है। यहां भावों में गहराई तो है ही भाषा भी इसकी गढ़ी हुई है।

त्रिलोचन की भाषा में सरलता के साथ–साथ लाक्षणिकता के भी दर्शन होते हैं। वह अपने शेरों में मुहावरों का भी प्रयोग करते हैं। सांकेतिक भाषा में जीवन के गंभीर तथ्यों की ओर इशारा भी उनकी शायरी करती है। जैसे कि इस शेर में–

श्वेत केशों ने कहा कान में त्रिलोचन के
तुम से जब दूर नहीं हैं अधिक जरा, देखो। (वही, पृ. 89)

उनकी ग़ज़लों में इस तरह के शेर संख्या में कम ही हैं। सरल स्वभाव के त्रिलोचन को अपनी बात सीधे–सीधे ढंग से कहना ज्यादा भाता है। घुमा–फिराकर अथवा लक्षणाव्यंजना में ही कविता करने से वह परहेज करते हैं। त्रिलोचन की भाषा में जहा लाक्षणिकता है वह भावों के अनुरूप ही है। त्रिलोचन मुहावरों का भी सुदर प्रयोग करते हैं। मुहावरों के प्रयोग से उनकी भाषा में कसाव आ गया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. **सर आंखों पर**

   हम तो सर आंखों पे लेने को तुम्हें बैठे हैं,
   क्या करें हम जो तुम्हीं सामने आया न करो। (वही, पृ. 18)

2. **तिनके का सहारा**

   'मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है

कहीं तिनके का भी सहारा नहीं है। (वही, पृ. 30)

3. **आंख का तारा**

अपने हृदय में स्थान मुझको दो तो त्रिलोचन
क्या दुःख जग की आंख का तारा नहीं हूं मैं। (वही, पृ. 55)

4. **दूध का जला**

बात क्या कहते हो, तुम से डरे त्रिलोचन जो,
मैं न मानूंगा, दूध का ही जला है कोई। (वही, पृ. 58)

5. **हाल पतला होना**

हाल पतला है मेरा तुझ से बताऊं तो क्या
दुख पुराना है नई बात सुनाऊं तो क्या (वही, पृ. 85)

6. **आंख में पानी न होना**

दुख तुमको किसी पर किसलिए हो, यह बात त्रिलोचन अच्छी नहीं
जिसकी आंखों में पानी नहीं, आभार तुम्हारा क्या जाने। (वही, पृ. 91)

गुलाब और बुलबुल संग्रह की ग़ज़लों में प्रतीकों और बिबों का प्रयोग त्रिलोचन ने हिंदी की परम्परा के अनुरूप किया है। इन ग़ज़लों में उर्दू–फारसी के परम्परागत प्रतीक यथा– गुल, साकी, मय, चांदनी, शम्मां, परवाना आदि का जिक्र नहीं मिलता। त्रिलोचन ने अपने प्रतीकों का चुनाव किसान जीवन और प्रकृति से किया है। उनकी शायरी में बसंत, धूप, सूर्य, नदी, खेत, वर्षा, छप्पर, कमल, अग्नि, बटोही, आषाढ़, कोयल आदि के प्रतीक प्रमुख रूप से उपस्थित हैं। प्रकृति से लिए हुए प्रतीकों का प्रयोग वह उल्लास और शुभ्रता के रूप में करते हैं। अपने एक शेर में सूर्य के प्रतीक द्वारा वह जागरण का एक सुंदर उदाहरण इस तरह से देते हैं–

जगिए हुआ है भोर सूर्य की ध्वजा चढ़ी,
घर घर य' समाचार सुनाया यहां वहां। (वही, पृ. 54)

वैसे तो त्रिलोचन की भाषा में खरापन ही ज्यादा देखने को मिलता है पर जहां कहीं वह दिल की गहराइयों से किसी अशआर को बयान करने लगते हैं उनमें गेयता आ गई है। उनके शेर सीधे जुबान पर चढ़ जाते हैं। कुछ शेर प्रस्तुत हैं–

मेरी चिता की भस्म भी उड़ उड़ के कहती है
सुनने को हम तरस गए दो बोल प्यार के। (वही, पृ. 101)

तड़पता हूं मगर मैं नाम तेरा ले कहां पाया
कभी तेरे किनारे नाव अपनी खे कहां पाया। (वही, पृ. 69)

त्रिलोचन की भाषा में अनुभूतियों का साधारणीकरण भी मिलता है। यहां जिस दर्द की चर्चा अभी की गई वह सिर्फ उनका अपना ही दर्द नहीं जमाने भर का है। अपने दर्द को जब वह जमाने के दर्द के साथ मिलाकर शब्दों में ढालते हैं तो उनकी भाषा में और भी गहराई आ जाती है। तब उनके अल्फाज देखने लायक होते हैं–

दर्द जो आया तो दिल में उसे जगह दे दी
आके जो बैठ गया मुझसे उठाया न गया। (वही, पृ. 22)

कहूं क्या बात आंखों की इन्हें परदा नहीं आता
कहीं कुछ वेदना देखी कि आंसू बह निकलता है। (वही, पृ. 99)

ग़ज़लगोई का ढंग

त्रिलोचन की शायरी में ग़ज़लगोई के कई ढंग देखने को मिलते हैं। कहीं वह बातचीत की शैली लिए हुए हैं तो कहीं कोई बात व्यंजनात्मक ढंग से कही है। यथार्थ जीवन की तल्ख सच्चाईयों को बयान करते हुए उसकी शायरी में एक संजीदा और गम्भीर तेवर दिखता है। उनकी ज्यादातर ग़ज़लें अभिधात्मक शैली में हैं जहां किसी बात को सीधे–साधे शब्दों में बयान किया है। इनमें से कुछ तो अपनी सपाट बयानी के कारण बोझिल से लगते हैं लेकिन जहां वाक्यों में प्रवाह है वह शेर अच्छे बन पड़े हैं।

बातचीत की शैली वाले शेरों में वह तुम और मैं वाला लहजा पकड़ते हैं। यहां तुम के रूप में कभी प्रेमिका होती है, तो कभी प्रकृति या फिर उनका अपना ही जीवन। एक शेर में वह प्रकृति से इस तरह संवाद स्थापित करते हैं–

मैने प्रभात से कहा बदले हुए हो आज

तो उसने मुस्करा के कहा आ गया बसंत। (वही, पृ. 56)

इसी तरह प्रेमिका से रूबरू कई सारे शेर हैं जिनमें शिकवे–शिकायतों के साथ अपनी बदहाली का जिक्र करते हैं–

तुम कहते हो तो ठीक, मुझे जीना ही होगा
यह भी जरा समझा दो कि जाऊं कहां कहां। (वही, पृ. 60)

या – उन्होंने मुझे देख के सुख जो पूछा
तो मैंने कहा–कौन जाने किधर है। (वही, पृ. 64)

बहुत से शेरों में खुद से बतियाते लगते हैं। जीवन के सफर पर निकला यह राही अपने आप से ही बातें कर खुद को तसल्ली दे लेता है। उनकी शायरी का यह अंदाज लुभाता है। कुछ शेर बहुत अच्छे बन पड़े हैं। देखिए–

जानता है तू त्रिलोचन क्या फकीरी रंग है
क्यों नगर में घूमता हूं क्यों सदा देता हूं में। (वही, पृ. 51)

या– तू हताश न हो त्रिलोचन स्वर ग़ज़ल का खूब है,
सब के हृदयों में बसा है सब के जी को भा चुका। (वही, पृ. 62)

ग़ज़लगोई का एक ढंग उनके यहां परम्परागत उर्दू शैली का मिलता है जिसमें शायद पहले किसी खयाल या बात को रखता है फिर उसकी तफसील में जाता है या पहले मिसरे को स्पष्ट करते हुए दूसरे मिसरे में दलील देता है। त्रिलोचन के यहां भी ऐसे शेर हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

कल की चिंता न करो आज का जीवन जी लो
आंखों के आगे है उपवन अभी हरा देखो। (वही, पृ. 89)

आंसुओं की झड़ी जहां हर दम
कैसे फिर भीगे बिना आत तू। (वही, पृ. 83)

इसी तरह वह एक अन्य शेर में यह खयाल पेश करते हैं कि बहुतों की जिंदगी खुले आसमान के तले कट जाती है। इसकी तफसील में जाते हुए वह

दूसरे मिसरे में कहते हैं क्योंकि किसी ने आज तक एक छप्पर न इनके लिए छाया—

ज़िंदगी कितनों की कटती है आस्मां के तले
एक छप्पर भी किसी से यहां छाया न गया। (वही, पृ. 22)

त्रिलोचन की ग़ज़लगोई में व्यंजनात्मक शैली भी मिलती है। इस तरह के शेरों में उनकी भाषा व्यंग्य का पुट लिए हुए है। भाषा की विदग्धता प्रभावित करती है। कुछ शेरों में व्यंग्य का स्वर स्पष्ट रूप से ध्वनित हुआ है तो कुछ में वह लाक्षणिक ढंग से अभिव्यक्त हुई है। त्रिलोचन बहुत ही नपे—तुले शब्दों में समाज की विसंगतियों पर प्रहार करते हैं। यहां उनकी भाषा देखने लायक है। यथा—

खूब संसार का चलावा है
हंस के मिलता है जी में जलता है। (वही, पृ. 78)

कुछ शेरों में उनका चुटीला अंदाज देखने को मिलता है। एक शेर में वह अपने ही पर सरस ढंग से व्यंग्य करते हैं—

मैनें देखा विपत्ति का अनुराग
मैं जहां था चली वहीं आई। (वही, पृ. 113)

त्रिलोचन की ग़ज़लें कभी—कभी गंभीर मुद्रा अख़्तियार कर लेती हैं। जब वह जिंदगी के फलसफे पर कुछ कह रहे होते है तो वहां शब्दों में एक किस्म की गंभीरता आ जाती है। वाक्य कसे हुए होते हैं। जैसे कि मौत की सच्चाई पर एक शेर कहते हैं—

गढ़ा मौत का है नहीं भरने वाला
यहां अनगिनत का सफ़ाया हुआ है। (वही, पृ. 123)

इसी तरह जीवन की क्षण भंगुरता पर एक शेर में कहते हैं—

न मध्याह्न की चौंध में भूल जाओ
अंधेरा कहीं छांह में पल रहा है। (वही, पृ. 52)

त्रिलोचन ने अपनी अधिकतर ग़ज़लें अभिधात्मक शैली में कही हैं। इन ग़ज़लों में वह अपनी बात को बगैर किसी लाग–लपेट के रखते हैं। शब्दों में तनाव या नाटकीयता नहीं है। सादगी पर अतिरिक्त आग्रह के कारण वह सपाट बयानी बन गई है। इन शेरों में न तो किसी तरह के रुमानी बिंब मिलते हैं न किसी तरह की अलंकृति। जो कहना है सीधे–सीधे शब्दों में बयान कर दिया। उनकी ग़ज़लगोई के इस ढंग पर डा0 वीरेन्द्र सिंह की टिप्पणी है– "त्रिलोचन में ग़ज़लगोई का जो रूप है, वह उस प्रकार का नहीं है जो हमें शमशेर या दुष्यंत में प्राप्त होता है। उसमें एक प्रकार की सपाट बयानी है जो पारंपरिक ग़ज़ल के लिए सर्वथा अमान्य रही है।"[6] उदाहरण के तौर पर कुछ शेर दिए जा रहे हैं जिनमें शब्द विन्यास ढीला होने से शेर नीरस बन गए हैं–

जब कहीं भी पयान करना हो
देख लो ठीक क्या नहीं क्या है। (वही, पृ. 106)

इसके अतिरिक्त उन्होंने जिन शेरों में भावों के अनुरूप शब्दों का चयन किया है वह अपनी अभिधात्मक शैली के बावजूद लुभाती हैं। उनमें भाषा की सादगी ही उसका सौंदर्य बन गई हैं। जैसे कि एक शेर में वह प्रिया के प्रति भावनाओं को बड़े की खूबसूरत ढंग से यूं बयान करते हैं–

यह भी जीने की एक सूरत है
मन के मंदिर में उनकी मूरत है। (वही, पृ. 48)

यह तो हुई उनकी ग़ज़लगोई की शैली। यहां उनके ग़ज़ल करने के ढंग पर विचार किया गया। त्रिलोचन की ग़ज़लों में किसी एक ही बात को विभिन्न संदर्भों में बयान करने का ढंग भी मिलता है। यहां उनकी शायरी में विविधता देखने को मिलती है। जैसे जब वह अपने अभावों और बदहाल जिंदगी का जिक्र करते हैं तो उसे कई रूपकों में अभिव्यक्त करते हैं। उनकी एक ग़ज़ल के कुछ शेर प्रस्तुत हैं जिसमें एक ही मूड की शायरी को कई तरह से अभिव्यक्त किया गया है।

बिस्तरा है न चारपाई है

जिंदगी खूब हमने पाई है।
जो बुराई है अपने माथे है
उन के हाथों महज भलाई है।
ठोंकरें दर–ब–दर की थी, हम थे
कम नहीं हमने मुंह की खाई है। (वही, पृ. 28)

इसी तरह प्रकृति पर लिखते हुए उसके सौंदर्य को विविध रूपों में अभिव्यक्त करते हैं। चित्रात्मक भाषा के प्रयोग ने शेरों को खूबसूरत बना दिया है। वह आषाढ़ और बसंत के उल्लास प्रकृति को शब्दों के माध्यम से जीवंत कर देते हैं। एक ग़ज़ल में प्रकृति के विविध चित्र देखिए–

खिली गुलाबों की डालियां हैं
उन्हें मधुश्री दुलार आई।
प्रसून फूले सुगंध छाई
हवा यह सब से जुहार आई।
लजा लजा कर उठी हैं कलियां
उमंग इन को उभार आई। (वही, पृ. 126)

ग़ज़ल संरचना की दृष्टि से

त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लों में उर्दू ग़ज़ल की संरचना का सफल निर्वाह किया है। उनकी ग़ज़लों में मतला, मक्ता, काफिया, रदीफ जो कि ग़ज़ल के अनिवार्य तत्व हैं सभी देखने को मिल जाते हैं। भाषिक दृष्टि से त्रिलोचन की ग़ज़लें हिंदी की परम्परा में है लेकिन संरचना की दृष्टि से वह उर्दू ग़ज़लों जैसी ही हैं। इस संदर्भ में मजहर इमाम लिखते हैं– "यहां यह बात रखने की है, त्रिलोचन शास्त्री ने उर्दू में नहीं, हिंदी में ग़ज़ल लिखी हैं इसलिए हिंदी जुबान का अपना मिजाज और हिंदी के अल्फाज और मुहावरे लाजिमी तौर पर इसमें अपनी झलक दिखाते हैं ... अलबत्ता फार्म और तकनीक के एतवार से इसे ग़ज़ल के दायरे में रखना होगा।"[7]

ग़ज़ल का पहला शेर मतला कहलता है जिसकी दोनों पंक्तियों में तुक समान होती है। त्रिलोचन की सभी ग़ज़लों में 'मतला' देखने को मिलता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है–

मेरा दिल व' दिल है कि हारा नहीं है
कहीं तिनके का भी सहारा नहीं है। (वही, पृ. 30)

इस शेर में 'हारा' और 'सहारा' काफिए की तुक समान हैं 'नहीं है' रदीफ भी दोनों पंक्तियों में समान है। यही शेर मलता कहलाता है। काफिया शेर में रदीफ से पहले आने वाला वह शब्द है, जिसका अंतिम एक या एकाधिक अक्षर स्थायी होता है और उसके पहले का अक्षर बदलता रहता है। ग़ज़ल के पहले शेर की दोनों पंक्तियों तथा बाद के प्रत्येक शेर की अंतिम पंक्ति के अंत में जिस शब्द समूह की आवृत्ति पाई जाती है उसे ग़ज़ल की रदीफ कहते हैं। त्रिलोचन का एक ग़ज़ल उदाहरण के तौर पर दिया जा रहा है जिसमें काफिए और रदीफ का सुंदर प्रयोग हुआ है–

कितने समीप थे वही कितने परे हुए
बैठे हैं आज याद में आंखे भरे हुए।

खंडहर में खोजते हो क्या अब क्या धरा वहां
बीते हजार साल युगों को मरे हुए।

छाया भी बड़ी चीज है हम मानते हैं यह
वर्षा है जिस के आने से तृण भी हरे हुए।

झापस है झड़ है, सात दिनों से लगा है तार
अब कांपते हैं पेड़ भी जैसे डरे हुए।

विश्वास कोई क्यों न करे इस पै त्रिलोचन
आंखों के सामने ही है खोटे खरे हुए। (वही, पृ. 105)

इस ग़ज़ल में परे, भरे, मरे, हरे, डरे और खरे काफिया का प्रयोग हुआ है। 'हुए' रदीफ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। त्रिलोचन की अन्य सभी ग़ज़लों में काफिए और रदीफ का प्रयोग हुआ है।

ग़ज़ल में भावन्विति अथवा एकन्विति नहीं होती, ज्यादातर ग़ज़लें ऐसी होती है कि उनके प्रत्येक शेर में एक अलग भाव या विचार रहता है। तुकान्त के सिवा उनमें आपस में कोई गहरा संबंध नहीं होता। त्रिलोचन की ग़ज़लों में भी इस परंपरा को देखा जा सकता है। उनके एक ग़ज़ल में दो शेर बिल्कुल ही अलग–अलग भाव भूमियों के मिल जायेंगे। जैसे किसी में प्रेम की बात कर रहे हों तो किसी में सामाजिक यथार्थ की। एक ग़ज़ल में इसी तरह अलग–अलग भाव भूमियों के शेर देखिए–

फिर तेरी याद जो कहीं आई
नीद आने को थी नहीं आई।
मैंने देखा विपत्ति का अनुराग
मैं जहां था चली वही आई।
भूमि ने क्या कभी बुलाया था
मृत्यु क्यों स्वर्ग से यहीं आई।
व्रत लिया कष्ट सहे वे भी थे
सिद्धि उनके यहां नहीं आई।
साधना के बिना त्रिलोचन कब
सिद्धि ही रीझ कर कहीं आई। (वही, पृ. 113)

ग़ज़ल के शेरों में विषयगत विभिन्नता के बावजूद एक प्रकार की लय तथा संगीतात्मकता होती है। ग़ज़ल के शेरों का एक ही बहर में होना तुकों की पुनरावृत्ति, रदीफ के कारण स्वर की एकात्मकता आदि उसे संगीत की लय से बांध देते हैं। त्रिलोचन की ग़ज़लों में यह संगीतात्मकता देखी जा सकती है। उनके जिन शेरों में काफिए, रदीफ का सहज और सुंदर प्रयोग हुआ है वह अच्छे बन पड़े हैं। प्रस्तुत ग़ज़ल में कहीं, नहीं, वहीं, यहीं और आई रदीफ की पुनरावृत्ति उसमें लय पैदा कर रही है।

त्रिलोचन की ग़ज़लों में उर्दू व्याकरण का प्रयोग भी देखने को मिलता है। उर्दू ग़ज़ल में दीर्घ स्वर को ह्रस्व स्वर के रूप में बोला जाता है। इस प्रकार है, ये, वो, वे, का, के आदि में प्रयुक्त दीर्घ स्वरों को हृस्व करके इन शब्दों को क्रमशः ह, य, वा, वे, क, कि, क, के रूप में पढ़ा जाता है। त्रिलोचन ने भी है, ये, वो की जगह ह, य का प्रयोग किया है। यथा–

कहीं रीझता है कहीं रूढ़ता है
य' दिल बावला है तो नादान भी है। (वही, पृ. 112)

जो दुनिया से ऊबा तो अपने से ऊबा
य' कैसी हवा है, य' कैसा असर है। (वही, पृ. 64)

व' आए तो आनंद भी लौट आया
व्यथा जो लिखी थी हंसी में छुपा ली। (वही, पृ. 65)

रुबाइयों को शिल्प

रुबाइ में चार समवृत्त चरण होते हैं अर्थात् यह चार पदों की एक छोटी कविता होती है जिसमें किसी भी विषय की चर्चा हो सकती है। इसमें कवि को इस प्रकार की भाषा का प्रयोग करना पड़ता है कि वह प्रभावात्पादक हो और पाठक को अभिभूत कर दे। गूढ़ व्यंजना ही इस प्रकार की कविता का प्राण है। कवि जो कुछ व्यक्त करना चाहता है उसे ऐसे नपे–तुले ढंग से कहता है कि श्रोता या पाठक चमत्मकृत हो उठता है। इसकी पहली, दूसरी और चौथी पंक्तियों के तुक मिलते हैं। तीसरी पंक्ति का तुक मिलना आवश्यक नहीं है।

त्रिलोचन की एक रुबाई देखिए जिसमें उन्होंने बड़े ही सधे ढंग से मौत के फलसफे को फूलों के रूपक द्वारा अभिव्यंजित किया है–

हम ने देखा था फूल हंसते थे
डाल पर झूल झूल हंसते थे।
पूछा कल की भी कुछ ख़बर है क्या
बात सब भूल भूल हंसते थे। (गुलाब और बुलबुल, पृ. 135)

प्रस्तुत रुबाई में फूलों का मौत की सच्चाई से बेपरवाह होकर हंसने की अभिव्यंजना चमत्कृत करती है। चार पंक्तियों में ही त्रिलोचन ने बेफिक्री के भाव को सुंदर ढंग से अभिव्यंजित किया है। इस रुबाई के पहले, दूसरे और चौथे पंक्ति के तुक समान हैं। तीसरी पंक्ति का तुक नहीं मिलता। गुलाब और बुलबुल की सभी रुबाईयों में इस नियम का पालन दिखता है। "रुबाई में आमतौर पर एखलाकी और फल्सफियाना मुजामी शामिल किये जाते हैं।"[8] त्रिलोचन ने भी अपनी रुबाइयों में जीवन जगत् की फिलासफी और सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है। भावों के अनुरूप भाषा में संजीदगी और गम्भीरता दिखती है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग प्रमुखता से किया है। एक रुबाई में देखिए–

स्वप्न द्रष्टा हूं स्वप्न वह आए
जिस की धारा में अमृत बह आए
द्वेष यह दुख यह, दुराशा यह
जाय, मन मन को सहे, सह आए। (वही, पृ. 140)

कुछ रुबाइयां उन्होंने लाक्षणिक ढंग से भी कही हैं। इनमें व्यंग्य और विदग्धता देखने को मिलती है। भाषा में खरापन है–

मंत्र मैंने लिया है तो अपना
हृदय भी यदि दिया है तो अपना
दूसरे किस लिए करें चिंता
बुरा मैंने किया है तो अपना (वही, पृ. 131)

इस तरह की रुबाइयों की भाषा पर मजहर इमाम लिखते हैं– "त्रिलोचन शास्त्री के यहां ऐसी गंभीर और संजीदा शिन्फ कहीं कहीं चुटकलों में बदल जाती है। ... ऐसा नहीं कि, तंजिया या मुजाहियां रुबाइयां न कही जाती हों। लेकिन रुबाइयों में तंज के बावजूद एक रकाब और संजीदगी होती है, एक तरह की गंभीरता होती है। मगर त्रिलोचन शास्त्री के यहां इस गंभीरता की कमी महसूस होती है, जो अच्छी शायरी के लिए जरूरी है।"[9]

त्रिलोचन ने जिन रुबाइयों में भावों के अनुरूप शब्दों का चयन किया है वह अच्छे बन पड़े हैं। हिंदी के आम बोल–चाल के शब्दों के प्रयोग से भाषा का सौंदर्य बढ़ गया है। जैसे–

खिड़की पै जो गोरैया चहचहाती है
जीवन के गान अपने वह सुनाती है
जाने कहां कहां से दिन में जा जा कर
प्राणों की लहर पंखों में भर लाती है। (वही, पृ. 146)

■

संदर्भ

1. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डॉ. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2004, पृ. 51।
2. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, सं. 2006, पृ. 59।
3. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, सं. 2001, पृ. 30।
4. त्रिलोचन के काव्य, राजू.एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1985, पृ. 65।
5. त्रिलोचन की कविता यात्रा, जीवन प्रकाश जोशी, संधान प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1983, पृ. 79।
6. बिंबों में झांकता कवि: शमशेर, डॉ. वीरेन्द्र सिंह, पंचशील प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1983, पृ. 79।
7. सापेक्ष, सं. महावीर अग्रवाल, अं. 38, जुलाई–सितम्बर, 1997, दुर्ग (म. प्र.) पृ. 57 से उद्धृत।
8. वही, पृ. 503।
9. वही, पृ. 506।

उपसंहार

उपसंहार

ग़ज़ल उर्दू–फारसी काव्य की लोकप्रिय काव्य विधा है। इसमें कम से कम शब्दों में बहुत बड़ी बात कहने की खूबी है। अपनी अर्थ सघनता, लयात्मकता और नफ़ासत के कारण यह शायर और पाठक को खूब लुभाती है। ग़ज़ल मूलतः अरबी भाषा की काव्य विधा है। ग़ज़ल शब्द भी अरबी भाषा का ही है जिसका अर्थ है औरतों से बातें अथवा औरतों से बातें करना। अरबी में ग़ज़लें नहीं मिलती इसका विकास फ़ारसी में हुआ। फ़ारसी के कवियों में ग़ज़ल में प्रणय का आधार बनाकर जो रचनाएं प्रस्तुत की उसमें विरह और सूक्ष्मता के समावेश ने ग़ज़ल को खासी लोकप्रियता प्रदान की। फ़ारसी से ग़ज़लों का आगमन उर्दू में हुआ। उर्दू ग़ज़लों में प्रेम और श्रृंगार के विविध रूपों का सुंदर वर्णन हुआ है। उर्दू शायरों ने ग़ज़ल को नई ऊंचाइयों पर पहुंचाया। हिंदी के कवि भी ग़ज़ल की ओर आकर्षित हुए। हिंदी के कवियों ने जब फारसी उर्दू से ग़ज़ल को ग्रहण किया तो उसके स्वरूप को भी बदला। हिंदी के पहले ग़ज़लकार अमीर खुसरों से लेकर भारतेंदु युग तक के ग़ज़लकारों का मुख्य विषय तो प्रणय ही रहा फिर धीरे–धीरे उसमें व्यापक जीवन संदर्भों का समावेश हुआ और हिंदी ग़ज़ल एक स्वतंत्र काव्य विधा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। आम जीवन की तल्ख सच्चाईयां, सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ उसके प्रधान विषय बने। शमशेर, दुष्यंत, कुंवर बेचैन, नीरज आदि ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल को नये आयाम प्रदान किये। इन ग़ज़लकारों ने हिंदी ग़ज़ल को आम आदमी की भावनाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनाया। हिंदी के प्रगतिशील कवि त्रिलोचन ने भी ग़ज़लें लिखीं हैं। 'गुलाब और बुलबुल' उनकी ग़ज़लों का रुबाइयों का संकलन है। संग्रह की ग़ज़लों की विषय वस्तु जीवन और प्रकृति के विभिन्न पहलुओं को उभारती है। एक ओर उसमें आत्मपरकता, करुणा और वेदना के स्वर हैं तो दूसरी ओर राजनीतिक, सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति भी। जीवन के सौंदर्य को प्रकृति के सौंदर्य के साथ प्रस्तुत कर त्रिलोचन ने ग़ज़ल में एक नई परंपरा की शुरूआत की। संघर्ष और श्रम के चित्र इसमें नए आयाम जोड़ते हैं। कह सकते हैं कि त्रिलोचन की ग़ज़लें परंपरागत शायरी की इश्क,

वेदना और श्रृंगार की एकरसता को तोड़कर जिंदगी की एक मुकम्मल तस्वीर पेश करती हैं। गुलाब और बुलबुल की रुबाइयां सामाजिक, राजनीतिक विद्रूप को चित्रित करती हैं। त्रिलोचन ने व्यंग्य का सुन्दर प्रयोग किया है। कुछ रूबाइयां चिन्तन और दर्शन प्रधान हैं। यहां जीवन और प्रकृति के प्रति उनके नजरिये में संजीदगी और गंभीरता मिलती है। शिल्प के स्तर पर त्रिलोचन की ग़ज़लों में सादगी और खरापन मिलता है। उनमें नफासत और रवानी का अभाव है। उर्दू–फारसी के बिंब और मुहावरे नहीं मिलते। त्रिलोचन ने अपनी ग़ज़लें हिंदी की जातीय परंपरा में लिखी हैं। जिसमें संघर्ष और व्यंग्य का स्वर प्रमुख है। उनकी भाषा में यथार्थ का खुरदुरापन है। वह रुमानियत की जगह सादगी को प्रमुखता देती है। त्रिलोचन के ग़ज़लों की भाषा ठेठ हिंदी के रंग को पकड़ती है। हिंदी परम्परा के प्रतीक, बिंब और मुहावरे उसमें रूपायित हुए हैं। वह हिंदी ग़ज़लों के शिल्प को एक नई पहचान देते हैं। सादगी और बोलचाल का लहजा उनकी भाषा का प्रमुख आकर्षण है।

त्रिलोचन ने हिंदी ग़ज़लों के कथ्य को विविधता से तो भरा ही है उसके शिल्प को भी हिंदी की प्रकृति के अनुकूल बनाया है। हिंदी ग़ज़ल के विकास और उसे एक नई पहचान देने वाले शायरों ने त्रिलोचन का नाम अविस्मरणीय रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

आधार–ग्रन्थ

1. गुलाब और बुलबुल, त्रिलोचन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1985।

सहायक–ग्रंथ

1. आधुनिक हिंदी कविता में उर्दू के तत्व, डॉ. नरेश, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1973।
2. अन्तर्गवाक्षः प्रगतिवादी काव्य पुनर्मूल्यांकन, डॉ. सुरेश गौतम, आलोक पर्व प्रकाशन, दिल्ली, 1997।
3. उर्दू कविता का विकास, डॉ. कृष्ण चन्द्र लाल, भवदीय प्रकाशन, फैजाबाद, 1995।
4. कविता के सम्मुख, गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
5. कविता के बीच से, दिविक रमेश, किताब घर, नई दिल्ली, 1992।
6. दक्खिनी हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ. परमानन्द पांचाल, जयश्री प्रकाशन, दिल्ली, 1986।
7. छवि संग्रह, त्रिलोचन, रजनी मेंहदीरत्ता, महात्मागांधी अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, 2003।
8. शब्द जहां सक्रिय हैं, नंद किशोर नवल, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1986।
9. रूप तरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, डॉ. रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
10. हिंदी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर, भूमिका प्रकाशन, नई दिल्ली–1993।
11. हिंदी की छायावादी ग़ज़ल, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2007।
12. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नजर में, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
13. हिंदी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001।
14. हिंदी ग़ज़ल दशा और दिशा, डॉ. नरेश, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004।
15. हिंदी ग़ज़ल की विकास यात्रा, ज्ञान प्रकाश विवेक, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2006।
16. हिंदी की प्रगतिवादी कविता, डॉ. सुरेन्द प्रसाद, चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1985।
17. हिंदी की प्रगतिशील कविता, डॉ. रणजीत, प्रगतिशील प्रकाशन, दिल्ली, 1971।

18. त्रिलोचन के बारे में, गोबिन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1994।

19. त्रिलोचन की कविता यात्रा, जीवन प्रकाश जोशी, संधान प्रकाशन, दिल्ली, 1983।

20. त्रिलोचन के काव्य, राजू.एम. फिलीप, यात्री प्रकाशन, दिल्ली, 1985।

21. त्रिलोचन संचयिता, सं. ध्रुव शुक्ल, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2002।

22. शब्द और मनुष्य, परमानंद श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1988।

पत्र–पत्रिकाएँ

1. सापेक्ष (त्रिलोचन विशेषांक) सं. महावीर अग्रवाल, दुर्ग (म.प्र.) जुलाई–सितम्बर 1997।

2. पुरुष, 21, 22वां अंक अप्रैल 1995।